लेखक-परिचय

श्री विश्वनाथ मुखर्जी जन्मना बंगाली होते हुए भी खांटी बनारसी हैं। सूरत, पहनावा और बोलीसे भोजपुरी होनेका भ्रम हो जाता है। सन् १९२४, जनवरी २३, दिन बुधवार, मिथुन लग्न, अश्लेषा नक्षत्र, कर्कट राशिमें दोपहरको काशीकी पवित्र भूमिमें पैदा हुए और यहींकी मिट्टीमें पलकर बड़े हुए। सन् १९४२ में कथाकारके रूपमें हिन्दीमें प्रवेश, बंगलाके सफल अनुवादक; हास्य व्यंग्यके लेखक और पत्रकार। 'अजगर', 'तरंग', और अब "आपका स्वास्थ्य" के सहायक सम्पादक। अबतक आधदर्जन पुस्तकोंके लेखक बन चुके हैं। "काशी अतीत और वर्तमान, पुस्तकके लिए उत्तरप्रदेश सरकार पुरस्कृत कर चुकी है। अत्यन्त सामाजिक होनेके कारण वेतनका हिस्सा मित्रोंकी तीमारदारी, दूसरोंकी मुसीबत और अपनी "कमबख्ती" के अर्पण करते रहते हैं। नसीहतोंके जवाबमें सिर्फ यह शेर फरमाते हैं :—

तू भी अय नासेह ! किसी पर जान दे
हाथ ला उस्ताद ! कह कैसी कही !

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—७१

बना रहे बनारस

विश्वनाथ मुखर्जी

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ

दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

प्रथम संस्करण

१९५८

मूल्य ढाई रुपये

मुद्रक

बाबूलाल जैन फागुल्ल

सन्मति मुद्रणालय,

दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

बनारस
और
बनारसकी मिट्टीसे
जिन्हें प्यार है !

मैंने कहा—

खुदाको हाजिर-नाजिर जानकर मैं इस बातको कबूल करता हूँ कि बनारसको मैंने जितना जाना और समझा है, उसका सही-सही चित्रण पूरी ईमानदारीसे किया है। प्रस्तुत पुस्तक जिस शैलीमें लिखी गयी है, आप स्वयं ही देखेंगे। जहाँ तक मेरा विश्वास है, किसी नगरके बारेमें इस प्रकारकी व्यंग्यात्मक शैलीमें वास्तविक परिचय देनेका यह प्रथम प्रयास है। इस संग्रहके कुछ लेख जब प्रकाशित हुए तब उनकी चर्चा वह रंग लायी कि लेखक सिर्फ हल्दी-चूनेके सेवनसे वंचित रह गया। दूसरी ओर प्रशंसाके इतने पत्र प्राप्त हुए हैं कि अगर समझने साथ दिया होता तो उन्हें रद्दीमें बेचकर कमसे कम एक रियायती दरवाला सिनेमा शो तो देखा ही जा सकता था।

इन लेखोंमें कहीं-कहीं जन-श्रुतियोंका सहारा मजबूरन लेना पड़ा है। प्रार्थना है कि इन 'श्रुतियों' और स्मृतियोंको ऐतिहासिक सत्य न समझा जाय। हाँ, जहाँ सामाजिक और ऐतिहासिक प्रश्न आया है, वहाँ मैंने धर्मराज बनकर लिखनेकी कोशिश की है। पुस्तकमें किसी विशेष व्यक्ति, संस्था या सम्प्रदायको ठेस पहुँचानेका प्रयत्न नहीं किया गया है, बशर्ते आप उसमें जबरन यह बात न खोजें। अगर कहीं ऐसी बात हो गयी हो या छूट गयी हो तो कृपया पाँच पैसेसे पन्द्रह नये पैसेके सम्पत्ति दानकी सनद मेरे पास भेज दें ताकि अगले संस्करणमें अपने आभारका भार आपपर लाद कर हल्का हो सकूँ।

गालिबके शेरोंके लिए आदरणीय बेढबजीका, जयनारायण घोषालकी कविताओंके लिए पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' जीका, संगीत सम्बन्धी जानकारीके लिए पारसनाथसिंहका, पाण्डुलिपि संशोधन, धार्मिक-

सांस्कृतिक जानकारीके लिए तथा प्रूफ संशोधनके लिए केशर और भाई प्रदीपजीका आभारी हूँ।

अन्तमें इस बातका इकबाल करता हूँ कि मैंने जो कुछ लिखा है, होश-हवाशमें लिखा है, किसीके दबावसे नहीं। ये चन्द अल्फाज़ इसलिए लिख दिये कि मेरी यह सनद रहे और वक्त ज़रूरतपर आपके काम आये। बस फ़कत—

सिद्धगिरि बाग,
बुद्ध पूर्णिमा, २०१५ वि०

बकलमखुद
विश्वनाथ मुखर्जी

विषय-सूची

: बना रहे बनारस :

जिस प्रकार हिन्दू धर्म कितना प्राचीन है पता नहीं चलता ठीक उसी प्रकार काशी कितनी प्राचीन है, पता नहीं लग सका। यद्यपि बनारसकी खुदाईसे प्राप्त अनेक मोहर, ईंट, पत्थर, हुक्का, चिलम और सुराहीके टुकड़ोंका पोस्टमार्टम हो चुका है फिर भी सही बात अभी तक प्रकाशमें नहीं आयी है। जन-साधारणमें अवश्य काशीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके पूर्व काशीको शंकर भगवान् अपने त्रिशूलपर लादे घूमते-फिरते थे। जब सृष्टिकी उत्पत्ति हो गयी तब इसे त्रिशूलसे उतारकर पृथ्वीके मध्यमें रख दिया गया।

यह सृष्टि कितनी प्राचीन है, इस सम्बन्धमें उतना ही बड़ा मतभेद है जितना योरोप और एशियामें या पूर्वी गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्धमें है। सृष्टिकी प्राचीनताके सम्बन्धमें एकबार प्रसिद्ध पर्यटक बर्नियरको कौतूहल हुआ था। अपनी इस शंकाको उसने काशीके तत्कालीन पण्डितों पर प्रगट की, नतीजा यह हुआ कि उन लोगोंने अलजबराकी भाँति इतना बड़ा सवाल लगाना शुरू किया जिसे देखकर बर्नियरकी बुद्धि गोल हो गयी। फलस्वरूप उसका हल बिना जाने उसने यह स्वीकार कर लिया कि काशी बहुत प्राचीन है। इसका हिसाब सहज नहीं। अगर हजरत कुछ दिन यहाँ और ठहर जाते तो सृष्टिकी प्राचीनताके सम्बन्धमें सिर्फ उन्हें ही नहीं, बल्कि उनकी डायरीसे सारे संसारको यह बात मालूम हो जाती।

चूँकि पृथ्वीके जन्मके पूर्व काशीकी उत्पत्ति हो गयी थी इसलिए इसे 'अपुनर्भवभूमि' कहा गया है। एक अर्सेतक शंकरके त्रिशूलपर चक्कर काटनेके कारण 'रुद्रावास' कहा गया। प्राचीन कालमें यहाँके जङ्गलोंमें भी

मङ्गल था, इसीलिए इसे 'आनन्दवन' और 'आनन्द-कानन' कहा गया। इन्हीं जङ्गलोंमें ऋषि-मुनि मौज-पानी लेते थे, इसीलिए इसे 'तपःस्थली' कहा गया। तपस्वियोंकी अधिकताके कारण यहाँकी भूमिको 'अविमुक्त-क्षेत्र' की मान्यता मिली। इसका नतीजा यह हुआ कि काफी तादादमें लोग यहाँ आने लगे। उनके मरनेपर उनके लिए एक बड़ा श्मशान बनाया गया। कहनेका मतलब काशीका नाम 'महाश्मशान' भी हो गया।

प्राचीन इतिहासके अध्ययनसे यह पता चलता है कि काश्य नामक राजाने काशी नगरी बसायी; अर्थात् इसके पूर्व काशी नगरीका अस्तित्व नहीं था। जब काश्यके पूर्व यह नगर बसा नहीं था तब यह निश्चित है कि उन दिनों यहाँ मनुकी सन्तानें नहीं रहती थीं, बल्कि शंकरके गण ही रहते थे। हमें प्रस्तर युग, ताम्रयुग और लौह युगकी बातोंका पता है। हमारे पूर्वज उत्तरी ध्रुवसे आये या मध्य एशियासे आये ? इसका समाधान भी हो चुका है। पर काश्यके पूर्व काशी कहाँ थी, पता नहीं लग सका।

काशीकी स्थापना

काश्यके पूर्वज राजा थे इसलिए उन्हें राजा कहा गया है अथवा काशी नगरी बसानेके कारण उन्हें राजा कहा गया है, यह बात विवादास्पद है। ऐसा लगता है कि इन्हें अपनी पैतृक सम्पत्तिमें हिस्सा नहीं मिला, फलस्वरूप ये नाराज होकर जङ्गलमें चले गये। जहाँ जङ्गल आदि साफकर एक फर्स्टक्लासका बंगला बनवाकर रहने लगे। धीरे-धीरे खेती-बारी भी शुरू की। लेकिन इतना करनेपर भी स्थान उदास ही रहा। नतीजा यह हुआ कि कुछ और मकान बनवाये और उन्हें किराये पर दे दिया। इस प्रकार पहले-पहल मनुकी सन्तानोंकी आबादी यहाँ बस गयी। आजकल जैसे मालवीय नगर, लाला लाजपतराय नगर आदि बस रहे हैं ठीक उसी प्रकार काशीकी स्थापना हो गयी।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि उन दिनों काशीकी भूमि किसी राजाकी अमलदारीमें नहीं रही वर्ना काश्यको भूमिका पट्टा लिखवाना पड़ता, मालगुजारी देनी पड़ती और लगान भी वसूल करते। चूँकि इस नगरीको आबाद करनेका श्रेय इन्हींको प्राप्त हुआ था, इसलिए लोगोंने समझदारीसे काम लेकर इसे काशी नगरी कहना शुरू किया। आगे चलकर इनके प्रपौत्रने इसे अपनी राजधानी बनाया। कहनेका मतलब परपोते तक आते-आते काशी नगरी राज्य बन गयी थी और उस फर्स्टक्लासके बंगलेको महल कहा जाने लगा था।

इन्हीं काश्य राजाके वंशधर थे—दिवोदास। सिर्फ दिवोदास ही नहीं, महाराज दिवोदास। कहा जाता है कि एकबार इनपर हैहयवंशवाले चढ़ आये थे। लड़ाईके मैदानसे भागकर हजरत काशीसे भाग गये। भागते-भागते गङ्गा-गोमतीके संगमपर जाकर ठहरे। अगर वहाँ गोमतीने इनका रास्ता न रोका होता तो और भी आगे बढ़ जाते। जब उन्होंने यह अनुभव किया कि अब पीछा करनेवाले नहीं आ रहे हैं तब वे कुछ देरके लिए वहीं आराम करने लगे। जगह निछद्दम थी। बनारसवाले हमेशासे निछद्दम जगह जरा अधिक पसन्द करते हैं। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने वहीं डेरा डाल दिया। कहनेका मतलब वहीं एक नयी काशी बसा डाली।

कुछ दिनोंतक च्यवनप्राशका सेवन करते रहे, डण्ड पेलते रहे और भाँग छानते रहे। जब उनमें इतनी ताकत आ गयी कि हैहयवंशवालोंसे मोर्चा ले सकें तब सीधे पुरानी काशीपर चढ़ आये और बातकी बातमें उसे ले लिया। इस प्रकार फिर काशिराज बन बैठे। हैहयवालोंके कारण काशीकी भूमि अपवित्र हो गयी थी, उसे दस अश्वमेध यज्ञसे शुद्ध किया और शहरके चारों तरफ परकोटा बनवा दिया ताकि बाहरी शत्रु झटपट शहरपर कब्जा न कर सकें। इसी सुरक्षाके कारण पूरे ५०० वर्ष यानी १८–२० पीढ़ीतक राज्य करनेके पश्चात् इनका वंश शिवलोकवासी हो गया।

काशीसे वाराणसी

इस पीढ़ीके पश्चात् कुछ फुटकर राजा हुए। उन लोगोंने कुछ कमाल नहीं दिखाया, अर्थात् न मन्दिर बनवाये, न स्तूप खड़े किये और न खम्भे गाड़े। फलस्वरूप उनकी खास चर्चा नहीं हुई। कमसे कम उन भले मानुषोंको एक-एक साइनबोर्ड जरूर कहीं गाड़ देना चाहिए था। इससे इतिहासकारोंको कुछ सुविधा होती।

ईसा पूर्व सातवीं शताब्दीमें ब्रह्मदत्त वंशीय राजाओंका कुछ हालचाल बौद्ध-साहित्यमें है, जिनके बारेमें बुद्ध भगवान्ने बहुत कुछ कहा है, लेकिन उनमेंसे किसी राजाका ओरिजनल नाम कहीं नहीं मिलता।

पता नहीं किसमें यह मौलिक सूझ उत्पन्न हुई कि उसने काशी नामको सेकेण्ड हैण्ड समझकर इसका नाम वाराणसी कर दिया। कुछ लोगोंका मत है कि वरुणा और असी नदीके बीच उन दिनों काशी नगरी बसी हुई थी, इसलिए इन दोनों नदियोंके नामपर इस नगरीका नाम रख दिया गया, ताकि भविष्यमें कोई राजा अपने नामका सदुपयोग इस नगरीके नामपर न करे। इसमें सन्देह नहीं कि वह आदमी बहुदूर-दर्शी था वर्ना इतिहासकारोंको, चिट्ठीरसोंको और बाहरी यात्रियोंको बड़ी परेशानी होती।

लेकिन यह कहना कि वरुणा और असी नदीके कारण इस नगरीका नाम वाराणसी रखा गया बिलकुल वाहियात है, गलत है और अप्रमाणिक है। जब पन्द्रहवीं शताब्दीमें यानी तुलसीदासजीके समय भदैनीका इलाका शहरका बाहरी क्षेत्र माना जाता था तब असी जैसे बाहरी क्षेत्रको वाराणसीमें मान कैसे लिया गया? दूसरे विद्वानोंका मत है कि असी नहीं, नासी नामक एक नदी थी जो कालान्तरमें सूख गयी, इन दोनों नदियोंके मध्य वाराणसी बसी हुई थी, इसलिए इसका नाम वाराणसी

रखा गया। यह बात कुछ हदतक काबिले गौर है, लिहाजा हम इसे तसदीक कर लेते हैं।

भगवान् बुद्धके कारण काशीकी ख्याति आधी दुनियामें फैल गयी थी। इसलिए पड़ोसी राज्यके राजा हमेशा इसे हड़पना चाहते थे। जिसे देखो वही लाठी लिए सरपर तैयार रहने लगा।

नाग, शुंग और कण्व वाले हमेशा एक दूसरेके माथेपर संगरी बजाते रहे। इन लोगोंकी जघन्य कार्यवाहीके प्रमाण-पत्र सारनाथकी खुदाईमें प्राप्त हो चुके हैं।

ईसाकी प्रथम शताब्दीमें प्रथम विदेशी आक्रमक बनारस आया। यह था—कुषाण सम्राट् कनिष्क। लेकिन था बेचारा भला आदमी। उसने पड़ोसियोंके बमचखमें फायदा जरूर उठाया पर बनारसके बहरी अलंग सारनाथको खूब सँवारा भी।

कनिष्कके पश्चात् भारशिवों और गुप्त सम्राटोंका रोब एक अर्सेतक बनारसवालोंपर गालिब होता रहा। इस बीच इतने उपद्रव बनारसको लेकर हुए कि इतिहासके अनेक पृष्ठ इनके काले कारनामोंसे भर गये हैं।

मौखरी वंशवाले भी मणिकर्णिका घाटपर नहाने आये तो यहाँ राजा बन बैठे। इसी प्रकार हर्षवर्द्धनके अन्तरमें बौद्ध धर्मके प्रति प्रेम उमड़ा तो उन्होंने भी बनारसको धर दबाया।

आठवीं शताब्दीमें इधरके इलाकेमें कोई तगड़ा राजा नहीं था, इसीलिए बंगालसे लपके हुए पाल नृपति चले आये। लेकिन कुछ ही दिनों बाद प्रतिहारोंने उन्हें खदेड़ दिया और स्वयं १५० वर्षके लिए यहाँ जम गये।

कन्नौजसे इत्रकी दूकान लेकर गाहड़वाले भी एकबार आये थे। मध्यप्रदेशसे दुधिया छाननेके लिए कलचुरीवाले भी आये थे। कलचुरियों

का एक साइनबोर्ड कर्दमेश्वर मन्दिर यहाँ 'कनवा' ग्राममें है। यही बनारसका सबसे पुराना मन्दिर है। इसके अलावा जितने मन्दिर हैं सब तीन सौ वर्षके भीतर बने हुए हैं।

वाराणसीसे बनारस

अबतक विदेशी आक्रमकके रूपमें वाराणसीमें कनिष्क आया था। जिस समय कलचुरी वंशके राजा गांगेय कुंभ नहाने प्रतिष्ठान गये हुए थे ठीक उसी समय नियालतगीन चुपकेसे आया और यहाँसे कुछ रकम चुराकर भाग गया। नियालतगीनके बाद जितने विदेशी आक्रमक आये उन सबकी अधिक कृपा मन्दिरोंपर ही हुई। लगता है इन लोगोंने इसके पूर्व कहीं इतना ऊँचा मकान नहीं देखा था। देखते भी कैसे? सरायमें ही अधिकतर ठहरते थे जो एक मंजिलसे ऊँची नहीं होती थी। यहाँके मन्दिर उनके लिए आश्चर्यकी वस्तु रही। उनका ख्याल था कि इतने बड़े महलमें शहरके सबसे बड़े रईस रहते हैं, इसीलिए उन्हें गिराकर लूटना अपना कर्त्तव्य समझा।

नियालतगीनके बाद सबसे जबर्दस्त लुटेरा मुहम्मदगोरी सन् ११९४ ई० में बनारस आया। उसकी मरम्मत पृथ्वीराज पाँच-छः बार कर चुके थे, पर जयचन्दके कारण उसका शुभागमन बनारसमें हुआ। नतीजा यह हुआ कि उस खानदान का नामोनिशान हमेशाके लिए मिट गया।

सन १३०० ई० में अलाउद्दीन खिलजी आया। उसके बाद उसका दामाद बार्बकशाह आया, जिसे 'काला पहाड़' भी कहा गया है। सन् १४९४ ई० में सिकन्दर लोदी साहब आये और बहुत कुछ लाद ले गये। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेबकी कृपा इस शहरपर हो चुकी है। फर्रुखसियर और ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी याद अभी ताजी है। पता नहीं, इन लोगोंने बनारसको लूटनेका ठेका क्यों ले रखा था? लगता है, उन्हें लूटनेकी यह प्रेरणा स्वनामधन्य लुटेरे महमूद गजनवीसे प्राप्त हुई थी।

संभव है, उन दिनों बनारसमें काफी मालदार लोग रहा करते थे अथवा ये लोग बहुत उत्पाती और खतरनाक रहे हों। इसके अलावा यह संभव है कि बनारसवाले इतने कमजोर रहे कि जिसके मनमें आया वही दो धौल जमाता गया। खैर, कारण चाहे जो कुछ भी हो बनारसको लूटा खूब गया है, इसे धार्मिक और इतिहासके पण्डित दोनों ही मानते हैं। बनारसको लूटनेकी यह परम्परा फर्रुखसियरके शासनकाल तक बराबर चलती रही।

इन आक्रमकोंमें कुछ लोग यहाँ बस गये। उन्हें वाराणसी नाम श्रुति कटु लगा, फलस्वरूप वाराणसी नाम घिसते-घिसते बनारस बन गया। जिस प्रकार रामनगरको आज भी कुछ लोग लामनगर कहते हैं। मुगलकालमें इसका नाम बनारस ही रहा।

बनारस बनाम मुहम्मदाबाद

औरंगजेब जरा ओरिजनल टाइपका शासक था। सबसे अधिक कृपा उसकी इस नगरपर हुई। उसे बनारस नाम बड़ा विचित्र लगा। कारण बनारसमें न तो कोई रस बनता था और न यहाँके लोग रसिक रह गये थे। औरंगजेबके शासनकालमें इसकी हालत अत्यन्त खराब हो गयी थी। फलस्वरूप उसने इसका नाम मुहम्मदाबाद रख दिया।

मुहम्मदाबादसे बनारस

मुगलिया सलतनत भी १८५७ के पहले उखड़ गयी। नतीजा यह हुआ कि सात समुद्र, सत्तर नदी और सत्ताइस देश पारकर एक हकीम शाहजहाँके शासन कालमें आया था; उसके वंशधरोंने इस भूमिको लावारिस समझकर अपनी सम्पत्ति बना ली।

पहले कम्पनी आयी, फिर यहाँकी मालकिन रानी बनी। रानीके बारेमें कुछ रामायण प्रेमियोंको कहते सुना गया है कि वह पूर्व जन्ममें त्रिजटा थी। संभव है उनका विश्वास ठीक हो। ऐसी हालतमें यह मानना

पड़ेगा कि ये लोग पूर्व जन्ममें लंकामें रहते थे अथवा बजरंगबलीकी सेनामें लेफ्ट-राइट करते रहे होंगे।

गौरांग प्रभुओंकी 'कृपासे' हमने रेल, हवाई जहाज, स्टीमर, मोटर, साइकिल देखा। डाक-तार, कचहरी और जमींदारीके झगड़े देखे। यहाँसे विदेशोंमें कच्चा माल भेजकर विदेशोंसे हजारों अपूर्व सुन्दरियाँ मंगवाकर अपनी नश्ल बदल डाली।

ये लोग जब बनारस आये तब इन्होंने देखा—यहाँके लोग बड़े अजीब हैं। हरवक्त गहरेमें छानते हैं, गहरेबाजी करते हैं और बातचीत भी फर्राटेके साथ करते हैं। कहनेका मतलब हरवक्त रेस करते हैं। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने इस शहरका नाम 'बेनारेस' रख दिया।

बनारससे पुनः वाराणसी

ब्राह्मणोंको सावधान करने वाले आर्योंकी आदि भूमिका पता लगाने वाले डाक्टर सम्पूर्णानन्दको यह टेढ़ा नाम पसन्द नहीं था। बहुत दिनोंसे इसमें परिवर्तन करना चाहते थे पर मौका नहीं मिल रहा था। लगे हाथ बुद्धकी २५०० वीं जयन्तीपर इसे वाराणसी कर दिया। यद्यपि इस नाम पर काफी बमचख मची, पर जिस प्रकार संयुक्तप्रान्तसे उत्तर प्रदेश बन गया, उसी प्रकार अब बनारससे वाराणसी बनता जा रहा है।

भविष्यमें क्या होगा ?

भविष्यमें वाराणसी रहेगा या नहीं, कौन जाने। प्राचीन कालकी तरह पुनः वाराणसी नामपर साफा-पानी होता रहे तो बनारस बन ही जायगा इसमें सन्देह नहीं। जिन्हें वाराणसी बुरा लगता हो उन्हें यह श्लोक याद रखना चाहिए—

खाक भी जिस जमींका पारस है,
शहर मशहूर यही बनारस है।

पाँचवीं शताब्दीमें बनारसकी लम्बाई ८ मील और चौड़ाई ३ मीलके लगभग थी। सातवीं शताब्दी आते-आते ६–६॥ मील लम्बाई और २॥–३ मील चौड़ाई हो गयी।

ग्यारहवीं शताब्दीमें न जाने क्यों इसका क्षेत्रफल ५ मीलमें हो गया। इसके बाद १८८१ ई० में पूरा जिला एक हजार वर्ग मीलमें हो गया।

अब तो वरुणा-असीकी सीमा तोड़कर यह आगे बढ़ती जा रही है; पता नहीं रबड़की भाँति इसका घेरा कहाँ तक फैल जायगा। आज भी यह माना जाता है कि गंगाके उस पार मरने वाले गदहा योनिमें जन्म लेते हैं, जिसके चश्मदीद गवाह शरच्चन्द्र चटर्जी थे। लेकिन अब उधरकी सीमाको यानी मुगलसरायको भी शहर बनारसमें कर लेनेकी योजना बन रही है। अब हम मरनेपर किस योनिमें जन्म लेंगे, इसका निर्णय शीघ्र होना चाहिए, वर्ना इसके लिए आन्दोलन-सत्याग्रह छिड़ सकता है।

बनारसमें शहरी क्षेत्र उतना ही माना जाता है जहाँकी नुक्कड़पर उसके गण अर्थात् चुंगी अधिकारी बैठकर आने-जाने वालोंकी गठरी टटोला करते हैं। इस प्रकार अब बनारस शीघ्र ही मेयरके अधिकारमें आ जायगा।

: बनारस—एक दिग्दर्शन :

सिर्फ काशी नगरी ही तीन लोकसे न्यारी नहीं है, बल्कि यहाँके लोग, उनका रहन-सहन, उनके आचार-विचार, यहाँ तक कि यहाँकी सरकारी--गैर सरकारी संस्थाएँ भी अपने ढंगकी निराली हैं। उदाहरणके लिए बनारस नगरपालिकाको ही ले लीजिये। इस नगरीका निरालापन कोई मुफ्तमें न देख जाय, इस गरजसे वह प्रत्येक यात्री पीछे एक आना प्रवेश-कर लेती है। जहाँ तक प्रवेश-करका सवाल है, हमें एतराज नहीं है। लेकिन पालिका 'निकासी कर' भी लेती है। कहनेका मतलब यह कि अगर कोई बाहरी आदमी बनारस आये और आकर वापस चला जाय तो उसे दो आनेकी चपत पड़ जाती है। शायद आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि घरके लोग अर्थात् खास बनारसके बाशिन्दे भी इस करसे मुक्त नहीं हैं। चूँकि यह कर रेलवेके माध्यमसे लिया जाता है, इसलिए हम आप नहीं जान पाते। काशी जैसी नगरीके लिए क्या यह नियम निरालेपनका द्योतक नहीं है ?

सफाई पसन्द शहर

इस 'कर'की बाबत कहा जाता है कि यह इसलिए लिया जाता है कि तीर्थस्थान होनेकी वजहसे यहाँ गन्दगी काफी होती है। लिहाजा 'सफाई खर्च' (बनाम जुर्माना) तीर्थयात्री-करके रूपमें लिया जाता है। बनारस कितना साफ-सुथरा शहर है, इसका नमूना गली-सड़कें तो पेश करती ही हैं, अखबारोंके 'संपादकके नाम पत्र' वाले कालम भी 'प्रशंसा-शब्दों'से रंगे रहते हैं। माननीय पण्डित नेहरू तथा स्वच्छ काशी आन्दोलनके जन्मदाता आचार्य विनोबा भावे इस बातके कन्फर्म्ड गवाह हैं।

खुदा आबाद रखें देशके मंत्रियोंको जो गाहे-बगाहे कनछेदन, मूंड़न, शादी और उद्घाटनके सिलसिलेमें बनारस चले आते हैं जिससे कुछ सफाई हो जाती है; नालियोंमें पानी और चूनेका छिड़काव हो जाता है।

निराली भूमि

अगर आप कभी काशी नहीं आये हैं तो आपको लिखकर सारी बातें समझायी नहीं जा सकतीं। अगर आये हैं और इसका निरालापन नहीं देखा है तो यह आपके लिए दुर्भाग्यकी बात है। शायद आप यह सवाल करें कि आखिर बनारसमें इतना क्या निरालापन है जिसके लिए ढिंढोरा पीटा जा रहा है, तो अर्ज है—

विज्ञानने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी शून्यमें स्थित है और वह सूर्यके चारों तरफ चक्कर काटती है। लेकिन इस तथ्यको भारतवासी नहीं मानते। उनका 'विज्ञान' यह कहता है कि पृथ्वी 'शेषनागके फन' पर स्थित है और स्वयं सूर्य उसके चारों ओर चक्कर काटता है। हमने कभी पश्चिम, उत्तर या दक्षिणसे सूरज उगते नहीं देखा। यह सब विज्ञानकी बातें चण्डूखानेकी गप्प है। एक बेपेंदीका लोटा जब बिना सहारेके इधर-उधर लुढ़कता है तब पृथ्वी जैसी भारी गोलाकार वस्तु (बकौल पश्चिमी विज्ञान) बिना किसी लाग (सहारे) के कैसे स्थिर रह सकती है?" बताइए, है कोई वैज्ञानिक-खगोलवेत्ता जो उत्तर देनेका साहस करे!

बनारस वालोंका दृढ़ विश्वास है—पृथ्वी शेषनागके फनपर स्थित है पर उनका बनारस भगवान् शंकरके त्रिशूलपर है। शेषनागसे उसका कोई मतलब नहीं। इसीलिए काशीको तीन लोकसे न्यारी कहा गया है, यहाँ गंगा उत्तरवाहिनी हैं, यहाँ कभी भूकम्प नहीं आता। कभी-कभी शंकर भगवान् जब आराम करनेके लिए त्रिशूलपर पीठ टेक देते हैं तब यहाँकी जमीन कुछ हिल भर जाती है। अधिक दूर क्यों, काशी शंकरके त्रिशूल पर है या नहीं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यहाँकी भूमिकी बनावट है।

अब आप एक त्रिशूलकी कल्पना करें जिसमें तीन फल होते हैं। बीच वाला फल सबसे ऊँचा और दोनों ओर ढालुआँ होता है। बाकी दोनों फल ऊपरी दिशामें मुड़े होते हैं। बीचवाला फल वर्त्तमान चौक-ज्ञानवापी है। प्राचीन कालमें काशीका महाश्मशान यहीं था। वर्त्तमान विश्वनाथ मन्दिरके निकटसे गंगा नदी बहती थी। शंकरका सबसे प्रिय स्थान श्मशान होने की वजहसे उसे शीर्ष स्थान दिया गया है। आज भी आधी रातके बाद शंकरके 'गण' इस स्थानके प्रसिद्ध बाजार कचौड़ी गलीमें मिठाई खरीदने आते हैं।

चौकके दोनों ओर भयंकर ढाल है। यह ढाल कितना भयंकर है, इसका अन्दाजा रिक्सेकी सवारीमें अनुभव हो जाता है। दक्षिणका ढाल जंगमबाड़ीमें और उत्तरका ढाल मैदागिनमें जाकर समाप्त होता है। फिर दूसरी चढ़ाईवाला ढाल मछोदरीसे राजघाट और उधर जंगमबाड़ीसे भदैनी तक है। इसके बाद दोनों तरफ उतराई है। काशीके इस भूगोलको पढ़नेके पश्चात् अब आपको भी मानना पड़ेगा कि काशी शंकरके त्रिशूल पर अवश्य स्थित है। इसमें सन्देह करनेकी गुंजाइश नहीं।

काशीका निरालापन

यदि आप आज भी बनारसकी खूबियोंसे अपरिचित हैं तो आइये आज आपका परिचय उससे करा दूँ। मुमकिन है आपने इन दृश्योंको देखा हो पर इस गरजसे न देखा हो कि यह सब भी बनारसकी खूबियोंमें है। सुबहे बनारसकी काफी दाद दी जाती है, इसलिए जब कभी आप बनारस तशरीफ ले आवें तो इसका ध्यान रहे कि सुबह हो; शाम या रात नहीं।

स्टेशनसे बाहर आते ही आपको दर्जनों जलपान गृह दिखाई देंगे। इन दूकानोंमें बनी सामग्रीकी सोंधी महकसे आपका दिल-दिमाग तर हो जायगा। यहाँसे आप शहरकी ओर ठीक नाककी सीधमें चलें। दाहिने-बायें देखनेकी जरूरत नहीं है।

स्टेशनसे एक फर्लाङ्ग आगे काशी विद्यापीठ है। यह वह संस्था है जहाँके छात्र या तो नेता बनते हैं अथवा शासक। काशी विद्यापीठ अथवा नेता जन्मदाता पीठ। इसीके पीछे काशीका प्रसिद्ध कब्रगाह फातमान है जहाँ इतिहासके प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध व्यक्ति चिर निद्रामें सोये हुए हैं। पास ही भारतमें अपने ढंगका अकेला मन्दिर 'भारतमाता का मन्दिर' है। इसके निर्माता हैं—स्व० दानवीर बाबू शिवप्रसाद गुप्त। मन्दिरकी बगलमें भगवानदास स्वाध्याय पीठ है। पुस्तकालयके ठीक सामने चन्दुवा-की प्रसिद्ध सट्टी है। कुछ दूर आगे शरणार्थी बस्ती, बर्मियोंका एक बौद्ध मन्दिर तथा बनारसमें खेल-कूदके लिए बनाया गया स्टेडियम है।

कुछ दूर आगे ईसाइयोंका गिर्जाघर है। प्राचीन कालमें यहाँ डाकू रहते थे जो राह चलते व्यक्तियोंको कत्ल करके कुएँमें छोड़ देते थे। काशी-का प्रसिद्ध मौतका कुआँ यहीं था। यहींसे दो रास्ते पूर्व और पश्चिम दिशाकी ओर गये हैं। पश्चिम वाला रास्ता वार-वनिताकी नगरीकी ओर तथा पूर्व वाला शहरकी ओर गया है। पूर्व वाले रास्तेमें बनारसका प्रसिद्ध 'आशिक-माशूक का कब्रगाह' है। बनारसी प्रेमियोंको यहींसे प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त होती है। यह वह ऐतिहासिक स्थान है, जिसके दर्शनके बिना प्रेम 'अनकन्फर्म्ड' रहता है। इस स्थानपर कैथके अनेक वृक्ष हैं। किंवदन्ती है, प्रत्येक वृक्षसे दो कैथ प्रतिपदाके दिन नियमित नीचे गिरते हैं।

थोड़ी दूर पर औरंगजेबके शासन कालमें निर्मित सराय, पानका दरीबा है। औरंगाबाद दर्शनीय मुहल्ला है। कहा जाता है—'काशी' बस-कर क्या किया जब घर औरंगाबाद।'

मुहल्ला सिगराके आगे भारत-विख्यात विद्वान् महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराजका मकान है। ठीक इन्हींके पीछेका स्थान 'छोटी गैबी' कहलाता है। जहाँ गुरूलोग रात बारह बजेतक नहाते-निपटते हैं। पास ही रथयात्राकी प्रसिद्ध चौमुहानी है। यहाँ वर्षमें तीन दिन जन-समारोह

होता है। काशीकी लोक-कलाके दर्शन सोरहिया तथा रथयात्राके मेलेमें ही होते हैं। लक्साकी अधिकांश रामलीला यहीं होती है।

पास ही विश्वविख्यात थियोसॉफिकल सोसायटी है। यहाँ बनारसके बालक और बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। सोसायटीके दक्षिण भागमें वैद्यनाथ और बटुकभैरवका मन्दिर है। इसी मन्दिरके समीप सेण्ट्रल हिन्दू-कालेज, बड़ी गैबी आदि प्रसिद्ध स्थान हैं।

कालेजसे कुछ दूर आगे खोजवाँ बाजार है, जो नवाबोंके खोजाओंके रहनेके कारण मुहल्ला बन गया। आजकल अनाजकी मण्डी है। पास ही शहरको आलोकित करनेवाला तथा जलदान करनेवाला 'बिजली घर' और 'पानीकल' हैं।

थोड़ा ही आगे बढ़ने पर अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अतिथिशाला दिखाई देगी। यहाँ संसारके ख्यातिप्राप्त राजनीतिज्ञ लोग आकर मेहमान-बाजी करते हैं। बनारसवालोंको अपनी इस कोठीपर नाज है जो संसारके महान् पुरुषोंको अपने यहाँ ठहराकर भारतीय संस्कृतिका परिचय देता है। यह भवन है—महाराजकुमार विजयानगरम् यानी 'ईजा नगर'की कोठी।

यहाँसे कुछ दूर दुर्गाकुण्ड है, जहाँ रामकी सेनाएँ ही नहीं बल्कि पास ही सेनापति महोदयका भी भवन है। दुर्गाकुण्डका मन्दिर रानी भवानी और वानर-सेनापति संकटमोचनका मन्दिर गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा स्थापित हुए हैं। संकटमोचनके मन्दिरमें नित्य सुन्दरकाण्ड और हनुमान चालीसाके पाठ करनेवाले भक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। खास-कर इम्तहानके समय विद्यार्थियोंकी भीड़ बढ़ जाती है। यूनिवर्सिटीके छात्रोंका विश्वास है, 'संकटमोचन बाबा' बिना पढ़े-लिखे परीक्षाकी वैतरणी पार कर जाते हैं। छात्र-छात्राएँ परस्पर प्रेमके स्थायित्वकी शपथ भी यहीं लेते हैं। यहाँका दलबेसन बहुत गुणकारी, प्रभावशाली होता है।

यह है—लंका; रावणवाली नहीं—काशीकी अपना निजी। आगे भारत प्रसिद्ध शिक्षा संस्था विश्वविद्यालय है। पास ही नगवा घाट है—

जहाँ बाबू शिवप्रसाद गुप्तकी कोठी है। यहीं पर एकबार स्वामी करपात्रीजी ने यज्ञ करवाया था।

यह है पुष्कर तीर्थ। इसके आगे असी और कुरुक्षेत्रका तालाब है। सूर्य ग्रहणके दिन तालाबमें धर्मप्राण व्यक्ति स्नानके नामपर कीच स्नान करते हैं। आगे भदैनी है और बगलमें तुलसीघाट, जहाँ तुलसीदासका खड़ाऊँ और उनके द्वारा स्थापित हनुमानजीका मन्दिर दर्शनीय है। बनारसका यह मुहल्ला साहित्यकोंका भी एक गढ़ है। सोलहवीं शताब्दीमें यह स्थान काशीका बाहरी अंचल माना जाता था।

यह है हरिश्चन्द्र घाट। कुछ लोग इसे काशीका प्राचीन श्मशान मानते हैं, पर यह बात गलत है। पहले यहाँ डोमोंकी बस्ती थी। डोम लोग महाश्मशानमें अपने परिवारकी लाश नहीं जला पाते थे। यह लोग अपनेको राजा हरिश्चन्द्रके वंशज मानते थे इसीलिए यह प्रचारित होता रहा कि यही काशीका प्राचीन श्मशान है, जहाँ राजा हरिश्चन्द्र श्मशानके रक्षक बने रहे।

हरिश्चन्द्र घाटके आगे काशीकी सबसे खड़ी सीढ़ीवालाघाट केदारघाट है। यहाँका घण्टा सभी मन्दिरोंके घण्टोंसे तेज आवाज़में गूँजता है। यहाँ से कुछ दूर पर तिलभाण्डेश्वर महादेवका मन्दिर है। कहा जाता है कि ये महादेवजी सालमें तिल बराबर वजनमें बढ़ते हैं। पता नहीं, इसके पूर्व इन्हें कभी तौला गया था या नहीं, वर्ना ये कितने प्राचीन हैं, इसका पता पुरातत्त्ववाले बता देते।

यह है मदनपुरा। संभवतः प्राचीनकालमें यहीं मदनका दहन हुआ था। बनारसी साड़ियोंके विश्व-विख्यात कलाकार इसी मुहल्लेमें रहते हैं।

अब हम गोदौलिया आ गये। प्राचीन कालमें यहाँ गोदावरी नदी बहती थी। गोदावरी तीर्थ स्थानके ऊपर आजकल मारवाड़ी अस्पताल स्थापित है। यहींसे एक रास्ता दशाश्वमेध घाटकी ओर गया है। आगे बड़ा बाजार है, बड़े-बड़े होटल और शर्बतोंकी दूकानें हैं। यहाँ काशीकी

ठण्ढई-सादी और विजया सहित मिलती है। शामके समय अधिकांश बुद्धि-जीवियोंका अड्डा यहाँ जमता है, जहाँ साहित्य-चर्चासे लेकर परचर्चा तक होती है। यहींसे उपन्यास लिखनेके फार्मूले, कहानी लिखनेके प्लाट, कविता लिखनेकी प्रेरणा और आलोचना लिखनेका मसाला मिलता है। न जाने कितने लोगोंका यहाँ मूड बनता और बिगड़ता है। साहित्यमें इन होटलोंकी देन महत्त्वपूर्ण है।

यह रहा गिर्जाघर, जहाँ ईसाई धर्मका प्रचार खुलेआम होता है। सुननेवालोंसे अधिक भाषण देनेवाले दिखाई देते हैं। पास ही बनारसकी सबसे बड़ी 'सोमरसकी मण्डी' यानी ताड़ीखाना है। कुछ दूर आगे नयी सड़क मुहल्ला है। बनारसमें अबतक जितने दंगे हुए हैं सभीका सूत्रपात इसी मुहल्लेसे हुआ है। बगलमें शेख सलीमका फाटक है। जिसके बारेमें इतिहासकार और पुरातत्वविदोंमें मतभेद है। एकका कहना है कि अकबर-पुत्र सलीम जब काशी आया था तब उसने इसे बनवाया था। दूसरेका कहना है कि शेख सलीम चिश्तीके नामपर अकबरने यहाँ फाटक लगवाया था। बात चाहे जो हो पर यह स्थान है ऐतिहासिक; इसे सभी मानते हैं। यहाँ भामाशाहका सुरमा मिलता है। पाँच पैसेमें सारे जीवनका रहस्य बताया जाता है।

यहाँ अधिकतर काबुलके सेठ रहते हैं जो बिना जमानत लिये, बिना रेहन रखे, सिर्फ शक्ल देखकर एक आने सूदपर मुक्तहस्त कर्ज देकर जनता जनार्दनकी सेवा करते हैं। पास ही एक बड़ा मैदान है जिसे विक्टोरिया पार्क अथवा बेनिया बाग कहते हैं। नाम तो इसका बाग है पर इसके एक भागमें अस्पताल, दूसरेमें चेतसिंहकी मूर्त्ति और बचा-खुचा भाग नेताओंके प्रवचन तथा नुमाइशके लिए रिजर्व रखा गया है।

बेनिया बागके आगे चेतगंज है। कहा जाता है कि यह मुहल्ला राजा चेतसिंहके नाम पर बसाया गया है। वारेन हेस्टिंग्स तथा चेतसिंहके सैनिकों

में यहीं युद्ध हुआ था। इस मुहल्लेकी नककट्टैयाकी ख्याति सम्पूर्ण भारतमें है।

कुछ दूर आगे लाल कोठीमें नगर पालिका और हथुआ कोठीमें भूत-पूर्व अन्नदाता वर्त्तमान सीमेण्ट–लोहादाता रहते हैं।

यह है लहुरावीरकी चौमुहानी। किसी जमानेमें यहाँ भूत रहते थे, अब आदमकी औलाद रहने लगी है। इन स्थानोंका काशीमें अपना निजी महत्त्व है। काशीमें प्रत्येक वीरोंके नामपर एक-एक मुहल्ला बस गया है। जैसे ड्योढ़ियावीर, भोजूवीर और लहुरावीर आदि।

इस चौमुहानीके उत्तरवाली सड़क कचहरी, पश्चिमवाली स्टेशन, दक्षिणवाली गिरजाघर और पूरबवाली राजघाटकी ओर गयी है। राजघाटकी ओर जानेवाली सड़ककी ओर आगे बढ़नेपर घोड़ा अस्पताल (पशु चिकित्सालय), कबीर मठ और शिवप्रसाद गुप्त औषधालय भी दिखाई देंगे।

अस्पतालके सामने बनारसका सबसे बड़ा किराना बाजार है, जहाँ जाते ही छींककी बीमारी शुरू हो जाती है। अस्पतालके बगलमें राधास्वामी-का मन्दिर है जहाँ वारेन हेस्टिंग्स आकर टिका था। पास ही "आज" अखबारका दफ्तर, लोहे-लकड़ीकी मण्डी लोहटिया और नखास है।

नखासके पास बड़े गणेशजीका मन्दिर है। यहाँ गणेश चौथके दिन मेला लगता है। इस मुहल्लेके पास ही हरिश्चन्द्र कालेज और दारा शिकोहके नामपर बसा हुआ मुहल्ला दारानगर है।

यह है मैदागिन। काशीके प्रमुख चौमुहानियोंमें अन्यतम। प्राचीन कालमें इस स्थानको मन्दाकिनी तीर्थ कहा जाता था। अब उसकी जगह कम्पनी बाग और टाउनहाल बन गया है। इस टाउनहालमें पहले अन्धेरी कचहरी थी। अब यहाँ कचहरी है, पर वह अपना प्रभाव छोड़ गयी है। फलस्वरूप टाउनहाल बकचोंचोंका मुरब्बा बन गया है। जिस प्रकार आज-

तक लंगड़ी भिन्नका रहस्य (छोटे, मंझले और बड़े कोष्ठका रहस्य) नहीं समझ सका, ठीक उसी प्रकार टाउनहाल क्या है, समझ नहीं सका। मुमकिन है, आप भी न समझ सकें।

इस स्थानसे कुछ आगे भारत प्रसिद्ध संस्था 'काशी नागरी प्रचारणी' सभा है। बाबा विश्वनाथके कोतवालका भवन और कोतवाली थानाका घनिष्ठ सम्बन्ध यहीं है। बनारसकी सबसे बड़ी अनाजकी मण्डी विश्वेश्वर-गंज भी यहीं है।

इस मुहल्लेके बारेमें कुछ लोगोंका मत है कि प्राचीन कालमें काशीका प्रमुख बाजार था। यहींपर विश्वनाथजीका मन्दिर था जिसे मुसलमानोंने तोड़ दिया। संभवतः इसीलिए इस मुहल्लेका नाम विश्वेश्वरगंज है। प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे मालूम होता है कि तुगलक कालके पूर्व शिवलिंगका नाम देवदेव स्वामी और अविमुक्तेश्वर था। विश्वनाथ नाम १२ वीं शताब्दीके बाद प्रचलित हुआ है। पास ही भीतरी महालमें गोपालजीका मन्दिर और बिन्दुमाधवका धरोहरा है। यहीं एक मकानमें छिपकर गोस्वामी तुलसीदास वाल्मीकि रामायणको मौलिक रूप दे रहे थे।

विश्वेश्वरगंजसे एक सड़क अलईपुर मुहल्लेकी ओर गयी है। यहाँ एक मुहल्ला आदमपुरा है, पता नहीं बाबा आदमसे इसका कोई सम्बन्ध है या नहीं।

कुछ दूर आगे मछोदरी पार्क है जहाँ राजा बलदेवदास द्वारा निर्मित अस्पताल और घण्टाघर है। राजा साहब दान देनेमें जितना सक्रिय रहे, उतना ही सक्रिय घण्टा टँगवानेमें रहे। बनारसमें उन्होंने कई जगह घण्टा टँगवाया है। घण्टा टँगवानेका क्या महत्त्व है, इसका कोई उल्लेख यद्यपि काशी खण्डमें नहीं है पर सुना गया है कि आपने लन्दनमें भी घण्टाघर बनवाया है। ज्ञातव्य रहे कि बनारसमें घड़ीघरको, जहाँ घण्टेकी आवाजसे समयकी सूचना मिलती है, घण्टाघर कहते हैं। मछोदरी बाग प्राचीनकाल-में मत्स्योदरी तीर्थ कहलाता था।

आगे राजघाट है। यह स्थान शहरका अन्तिम भाग है। इस भूभागका बनारसके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकालमें यहाँ अनेक राजाओंकी आवास भूमि रही। वे सब गंगाकी गोदमें चले गये। अब यहाँ केवल खण्डहर रह गये हैं जिसे सरकार खुदवाकर कुछ पुरातत्त्वविदोंकी कचूमर निकालना चाहती है। इससे कुछ लोगोंको चण्डू-खानेकी दून हाँकनेका मौका मिलेगा।

अब हमें पुनः शहरकी ओर मुड़ना है और शहरका प्रमुख भाग देखना है। इसलिए अब पुनः हम मैदागिनके पास आते हैं और यहींसे दक्षिणकी ओर बढ़ते हैं।

मैदागिनसे कुछ दूर आगे बढ़नेपर कर्णघण्टा नामक स्थान है। कहा जाता है, यहाँका मन्दिर गांगेयका पुत्र यशकर्णने बनवाया था। इतिहास-कारोंकी बहुत-सी अटकल पच्चूवाली बातें इसलिए स्वीकार करनी पड़ती है कि यह सब घटनाएँ जब हुईं तब हम बनारसमें नहीं थे। यहाँसे कुछ दूर आगे बाबा विश्वनाथके थर्ड डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस आसभैरव रहते हैं। काशीके प्रमुख उद्योग धन्धोंकी सामग्रियाँ इस इलाकेमें मिलती हैं। मसलन लकड़ीके विभिन्न सामान, पीतलके बर्तन, जरी और सोने-चाँदीके जेवरात इत्यादि। इसी क्षेत्रमें एक जगह कन्नौज, जौनपुर-गाजी-पुरका इलाका बस गया है। दूसरी ओर बनारसका प्रमुख-व्यवसाय बनारसी साड़ियोंका रोजगार होता है। पुस्तक व्यवसायी, समाचार पत्र विक्रेता, मंगलामुखियोंकी हाट और फलवालोंकी दूकान इसी क्षेत्रमें हैं।

यह चौकका फौव्वारा है। पहले यहाँ फौव्वारा लगा था, अब वहाँ बनारस स्टेट बैंक है। बनारसका सबसे जानदार इलाका यही है। यहाँ अजीब बातें, अजीब शक्लें और अजीब दृश्य देखनेको मिलते हैं।

कविराज कालीपदो दे का आश्चर्य मलहम जो १०१ बीमारियोंमें फायदा पहुँचाता है—आवाज लगाते हुए बगलमें टीनका डब्बा लिए बंगाली बाबू टहलते हैं। आँखोंमें चश्मा पहने और हाथमें सिर्फ एक

चश्मा लिए—'एक चश्मा' की आवाज़ देते हुए बड़े मियाँ कुछ लोगों की आँखें पढ़ते नजर आते हैं।

जल जीरेका पानी—आमका पन्ना बेचनेवालोंकी गाड़ी, गंडेरी मेरी अव्वल, पैसा लेना डब्बल, दिया सलइया पैसेमें, सुइया चार मुनाफेमें आदि सामानें बिकती हैं।

कुछ दूकानदार यहाँ हर माल छः छः पैसेमें बेचते हैं क्योंकि कम्पनी-का माल वे लुटा रहे हैं। अब आपको गरज हो तो खरीदिए। गंजी भी छः पैसेमें, फाउण्टेन पेन भी छः पैसेमें मिलती है।

एक ओरसे एक बन्द कनस्तर लिए "गरेम है जी" की आवाज आती है। जबतक आप उनसे सामान न खरीदें तबतक आप यह नहीं समझ पाइयेगा कि क्या गरम है—वातावरण, मौसम, वे स्वयं या बन्द कनस्तरका सामान। आजसे तीन वर्ष पूर्व सड़कपर "केसरिया तर हव राजा" की आवाज लगाता हुआ एक आदमी झूमता हुआ नजर आता था। उसकी गैर मौजूदगी आजके बच्चोंको खलती है। नरम-गरम, नरम-गरमकी आवाज लगाता हुआ एक आदमी बड़ी तेजीसे लाल साइनबोर्ड पहने आपके बगल-से गुजर जायगा।

यह है परमानेण्ट हरे राम-हरे रामकी फैक्टरी। जहाँ लाउडस्पीकरसे शामके समय भक्ति प्रदर्शन होता है। सामने ही बीबी रोजाकी मसजिदके बारेमें कहा जाता है कि पहले यहाँ विश्वनाथ मन्दिर था। जिसे कुतुबद्दीन ऐबकने तोड़ा था। नीचे ज्ञानवापीकी प्रसिद्ध मसजिद है जिसे औरंगजेबने निर्मित कराया था।

यह है सत्यनारायण मन्दिर। जहाँ श्रावणमें भगवान् झूला झूलते हैं। उनका श्रृंगार देखने काबिल होता है। आगे बाँस फाटक है।

बनारसके मुहल्लोंका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कालमें यह नगर अरब देशोंकी भाँति बन्द नगरी थी जिसके चारों तरफ

फाटक थे। मसलन हाथी फाटक, बाँस फाटक, शेख सलीमका फाटक, रंगीलदासका फाटक और फाटक सुखलाल साहु आदि आठ फाटक थे।

अब हम गोदौलियापर आ गये। इस प्रकार सारा शहर घर बैठे देख लिया। क्या जरूरत कि आप बनारस आयें और दो आना प्रवेश कर दें। हाँ, यदि गंगा स्नान, विश्वनाथ दर्शन अथवा शहर देखनेका काफी शौक है तो हमें एतराज नहीं। अगर और निरालापन देखना हो तो यहाँके धनुषाकार घाट, धरोहरका एक खम्भा, यहाँकी गलियाँ और यहाँके मेले देखें। बस सारा बनारस आपकी नजरोंसे गुजर जायगा।

: बनारसकी गलियाँ :

जो लोग बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे शहरोंमें एकबार हो आए हैं अथवा किसी कारणवश अब वहीं रहने लग गए हैं, ऐसे लोग जब कभी किसी छोटे शहरमें आयेंगे तो उस शहरके बारेमें इस तरह बातचीत करेंगे मानों परमाणु बमका भेद बता रहे हों। चूँकि हम कभी दिल्ली, बम्बई गये, नहीं, इसलिए हम उनकी बातें मुँह बाकर इस तरह निगल जाते थे जैसे बरसातमें छिपकलियाँ पतिंगोंको। कभी-कभी हम यह महसूस करने लगते, नाहक हमारी पैदाइश बनारस जैसे शहरमें हुई। काश ! हम बंबई, कलकत्ता जैसे शहरोंमें पैदा हुए होते वहाँकी ऊँची-ऊँची इमारतोंसे नीचेकी ओर झाँककर देखते कि आदमी अंगूठेसे कितना बड़ा होता है, चौपाटी और मलाबार हिलसे समुद्रकी अजगर सरीखी लहरें गिनते।

इन शहरोंकी तारीफ़में खास चर्चा मकानों और सड़कोंके बारेमें होती है। वहाँके मकान इतने ऊँचे हैं कि सड़कपर खड़े होकर ऊपर देखो तो टोपी गिर जाय। सड़कें इतनी खुशनुमा हैं कि पैर फिसल जाते हैं। चौड़ाई तो इतनी कि यहाँकी तीन एक ही में घुस जाँय। गलियाँ तो वहाँ है ही नहीं, और जो हैं भी वे यहाँकी सड़कोंकी नानीसे कम नहीं। धीरे-धीरे उनकी बातचीतका असर इस कदर होता है कि हम यह फरमान जारी कर देते हैं—इस साल चाहे जैसे हो कलकत्ता, बम्बई जाकर ही रहेंगे। हमारे इस एलानको सुनकर हजरत यू मुँह सिकोड़ लेते जैसे १०० ग्रेन कुनैनका मिक्स्चर पी लिया हो। मस्तकपर मुट्ठी भर बल डाले इस अन्दाजसे कह उठते—'खुदा झूठ न बोलाए। आज तीन साल हो गये

वहाँ रहते, पर अभीतक हम यह नहीं जान सके कि कौन सड़क किधर जाती है। फलाँ जगह जानेके लिए किन-किन सड़कोंसे या किस बसपर सवार होकर जा सकते हैं—नहीं बता सकते। रातको कौन कहे दिन को भी हम अक्सर रास्ता भूल जाते हैं। फिर आप जैसे आदमी जायँ तो खो जानेमें कोई शुबहा नहीं। दायें-बायेंका ख्याल न रखें तो हवालातमें बन्द हो जायँ या सीधे नरकका टिकट कटायें। अगर आप किसी ठग या सुन्दरीके चक्करमें आ गये तो बेड़ा गर्क ही समझिए।'

चूँकि हम अपने माँ-बापकी इकलौती संतान और अपनी बेगमके इकलौते मियाँ हैं, इसलिए मुफ्तमें खो जाना या हवालातमें बन्द होकर नरकका टिकट कटाना कतई पसंद नहीं करते। जबकि हम पैदा होते ही अपने बापको यह सर्टिफिकेट दे चुके हैं कि आपकी गैर मौजूदगीमें मैं और मेरी औलाद आपको पितृ पक्षके दिनों पानी जरूर देंगे। नतीजा यह होता है कि हम अपनी फैसला चुपचाप वापस ले लेते हैं, फिर कभी उधर जायेंगे यह ख्याल ख्वाबमें भी नहीं लाते।

यह अजीब इत्तिफाककी बात है कि एकबार हमारे घर एक नजूमी आया और उसने बताया कि मैं बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे शहरों-में जरूर जा सकता हूँ। बात ठीक निकली। वह अरमान जो कि कुचल दिया गया था, पुष्पित हो उठा। हम गये और वापस भी चले आये। न कहीं खोये, न कहीं पैर फिसला। न कहीं टोपी गिरी, न हवालातमें बन्द हुए। ठग और सुन्दरीसे भेंट हुई, पर हम उनकी चकल्लसमें नहीं आये। लेकिन जो मजा बनारसकी गलियोंमें है, वह मजा दुनियाँके किसी पर्देमें नहीं है। जो आजादी यहाँके हर गली-कूँचेमें है उसे ये सात जन्ममें नहीं पा सकते। बनारसी गलियोंका कुछ मजा सिर्फ मथुरामें मिल सकता है।

बनारसकी सड़कें

बनारसमें जितनी सड़कें हैं, उससे सौगुनी अधिक गलियाँ हैं। यदि आप बनारसकी सड़कोंका मुआइनाकर बनारसके बारेमें फैसला देंगे तो यह सेंटपरसेंट अन्याय होगा। असली मज़ा तो बनारसकी गलियोंमें दुबका हुआ है। बनारसी भाषामें उन्हें 'पक्का महाल'—'भीतरी महाल'—कहते हैं। काशी खंडके अनुसार विश्वनाथ खंड—केदारखंडकी तरह वर्तमान बनारस भी दो भागोंमें बसा हुआ है—भीतरी महाल (पक्का महाल) और बहरी तरफ। आपने सिर्फ बाहरी रूप अर्थात् कच्चा रूप देखा है। पक्का रूप देखना हो तो गलियोंमें टहरान दीजिए।

यहाँकी सड़कें अभी जुमा-जुमा आठ रोज हुए बनी हैं यानी 'लली' है। बेचारी टीकसे सूख भी नहीं पायी है। यकीन न हो तो किसी दिन गर्मी-के मौसममें पैदल चलकर देख लीजिए। सुकतल्ला सड़कपर चिपककर रहा जायगा और हवाली जूता आपके पैरोंमें। यदि जूता काफी मजबूत हुआ तो बनारसकी धरती इस कदर प्यारसे आपके कदमोंको चूमेगी कि उससे अपना दामन छुड़ानेमें आपको छट्ठीका दूध याद आ जायगा। अगर आपकी यह कसरत बनारसी-पट्ठोंने देखी तो—"बोल छमाना छे—खिंचले रहे पट्ठे—जाये न पावे' फिकरा कस ही देंगे। कहनेका मतलब यह कि बना-रसकी सड़कें हर पैदल चलनेवाले मुसाफिरोंसे बेहद मुहब्बत करती हैं। इनकी मुहब्बत हर मौसममें अलग ढंगसे पेश आती है। बरसातमें इनकी होली देश विख्यात है और वसंत ऋतुमें जब ये आपपर 'गुलाल' बरसाने लगती हैं तो मत पूछिए! आनन्द आ जाता है।

स्कूलोंमें आप ज्योमेट्रीकी शिक्षा पा चुके होंगे। मुमकिन है कि उसकी याद धुंधली हो गयी हो। यदि आप बनारसकी सड़कोंपर टहलान दें तो मजबूरन ज्योमेट्रीके प्रति दिलचस्पी पैदा हो जायगी। जब कोई बैलगाड़ी, ट्रक, जीप या टैक्सी इन सड़कों परसे गुजरती है तब हर रंगकी हर ढंगकी

समानान्तर रेखाएँ त्रिभुज, चतर्भुज और षट्कोणके ऐसी अजीब गरीब नक्शे बन जाती हैं कि जिसका अंश बिना परकालकी सहायताके ही बताया जा सकता है। नगरपालिकाको चाहिए कि वह अपने यहाँके अध्यापकोंको इस बातका आदेश दे दे कि वे अपने छात्रोंको सड़कपर बने हुए इस ज्योमेट्रीका परिचय अवश्य करा दे। सुना है काशीके कुछ माडर्न आर्टिस्ट इन नक्शोंके सहयोगसे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

यहाँकी सड़कें डाक्टरोंकी आमदनी भी बढ़ाती हैं। यही वजह है कि अन्य शहरोंसे कहीं अधिक बनारसमें डाक्टर हैं। यदि आप किसी रिक्शे पर सवार होकर एकबार शहर परिक्रमा कर लें तो इसका अनुभव हो जायगा। बनारसके बाशिंदे तो इसके आदी हो गये हैं। यहाँके कुछ गुरूओंका, (जो लंदन, पेरिस और अमेरिका हो आये हैं) कहना है कि उन्हें हवाई जहाज या समुद्री जहाजमें चक्कर देनेवाली बीमारी इन सड़कोंके हिचकोले खानेके कारण नहीं हुई। इसलिए आपको जब कभी विदेश जानेकी जरूरत हो तो एकबार बनारस आकर रिक्शेकी सवारीपर हिचकोले जरूर खाइए। यहाँ हर पाँच कदमपर गड्ढे हैं। जब इन गड्ढोंमें रिक्शेका पहिया फँसेगा तब पेटका सारा भोजन कण्ठतक आ जायगा। दूसरे दिन बदनमें इतना दर्द हो जायगा कि आपको डाक्टरका दरवाजा खटखटाना पड़ेगा।

अंग्रेजी शासनकालमें जब कोई गवर्नर या अधिकारी काशी दर्शनके लिए आता था तब उसे खास सड़कोंसे ले जाया जाता था। जब लगातार लोग यहाँ आने लगे तब कैण्टसे नदेसरतक और कैण्टसे पानीकलतक सीमेंटकी सड़कें बना दी गयीं। विश्वविद्यालयके छात्र खुराफाती होते ही हैं। एकबार उत्तर प्रदेशके भूतपूर्व गवर्नर माननीय कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीजीकी मोटर लंकासे अस्सीकी ओर इन लोगोंने चलवा दी। नतीजा यह हुआ कि नगरपालिकाने उस सड़ककी खाजको दूसरे साल मलहम पट्टी लगाकर कुछ

हद तक ठीक कर दिया। भगवान् करें हर प्रांतके गवर्नर यहाँ आवें और इस प्रकार प्रत्येक सड़कका खाज-एक्जीमा दूर होता रहे।

गलियोंकी विशेषता

काशीमें सड़कोंका कोई महत्त्व नहीं है, इसलिए बहुत कम लोग सड़कों पर चलते हैं। सड़कोंका उपयोग जुलूस निकालते समय होता है। उसपर पैदलसे अधिक लोग सवारीसे चलते हैं। इधर कुछ ऐसे लोग (शायद मेंटल हासपिटलसे छूटकर) आ गये हैं जो सड़कोंको महत्त्व देने लग गये हैं। ऐसे लोग लंबे सड़क 'मकान बिकाऊ है,' 'दुकान खाली है,' अथवा 'भाड़े पर लेना है'—का विज्ञापन छपवाते हैं।

काशीकी अधिकांश गलियाँ ऐसी हैं जहाँ सूर्यकी रोशनी नहीं पहुँचती। कुछ गलियाँ ऐसी हैं जिनमेंसे दो आदमी एक साथ गुजर नहीं सकते। इन गलियोंकी बनावट देखकर कई विदेशी इंजीनियरोंकी बुद्धि गोल हो गयी थी! जो लोग यह कहते हैं कि बंबई-कलकत्ताकी सड़कोंपर खो जानेका डर रहता है, वे काशीकी गलियोंका चक्कर काटें तो दिन भरके बाद शायद ही डेरेतक पहुँच सकेंगे। आज भी ऐसे अनेक बनारसी मिलेंगे जो बनारसके सभी गलियोंको छान चुके हैं, कहनेमें दाँत निपोर देंगे।

इन गलियोंसे गुजरते समय जहाँ कहीं चूके तुरन्त ही दूसरी गलीमें जा पहुँचेंगे। कलकत्ता, बंबईकी तरह सड़ककी मोड़पर अमुक दूकान, अमुक निशान रहा—याद रहनेपर मंजिलतक पहुँच सकते हैं—पर बनारसमें इस तरहके निशान-दूकान-साइनबोर्ड भीतरी महालमें नहीं मिलेंगे। नतीजा यह होगा कि काफी दूर आगे जानेपर रास्ता बन्द मिलेगा। उधरसे गुजरनेवाले आपकी ओर इस तरह देखेंगे कि यह 'चोंइया' इधर कहाँ जा रहा है। नतीजा यह होगा कि आपको पुनः गलीके उस छोरतक आना

पड़ेगा जहाँसे आप गड़बड़ाकर मुड़ गये थे। कुछ गलियाँ ऐसी हैं कि आगे बढ़नेपर मालूम होगा कि आगे रास्ता बन्द है, लेकिन गलीके छोरके पास पहुँचनेपर देखेंगे कि बगलसे एक पतली गली सड़कसे जा मिली है। अक्सर इन गलियोंमें जब खो जानेमें आता है, खासकर रातके समय, तब लगता है जैसे ऊँचे पहाड़ोंकी घाटियोंमें खो गये हैं। इन गलियोंमें लोग चलते फिरते कम नजर आते हैं। जो नजर भी आते हैं, वे उस गलीके बारेमें पूर्ण विवरण नहीं बता सकते। हो सकता है, वह भी आपकी तरह चक्कर काट रहे हों। गलियोंका तिलस्म इतना भयंकर है कि बाहरी व्यक्ति-को कौन कहे अन्य लोग भी जानेमें हिचकते हैं। कुछ गलियाँ ऐसी हैं जिनसे बाहर निकलनेके लिए किसी दरवाजे या मेहराबदार फाटकके भीतरसे गुजरना पड़ता है।

बंबई, कलकत्ताकी तरह यहाँकी सड़कोंमें चारसे अधिक रास्ते नहीं हैं, पर गलियोंमें चारसे चौदहतक रास्ते हैं। किस गलीसे आप तुरन्त घर पहुँच सकते हैं, यह बिना जाने या बिना पूछे नहीं जान सकते। जिस गली-से आप घर पहुँच सकते हैं, उसीसे आप श्मशान या नदी किनारे भी जा सकते हैं।

गलियोंका नगर

शैतानकी आंतकी भांति यह भूल-भुलैया संसारका एक आश्चर्य-जनक दर्शनीय स्थान है। इन गलियोंमें कितनी आजादी है। नंगे घूमो, गमच्छा पहिने चलो, जहाँ जी में आये बैठो और जहाँ जी आये सो जाओ। कोई बिगड़ेगा नहीं, भगायेगा नहीं और न डांटेगा। गावदीका गमच्छा या सिल्कका कुरता पहने बनारसी रईस भी इन गलियोंमें छाता लगाये चलते हैं। शायद आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जिस गलीमें सूर्यकी रोशनी नहीं पहुँचती, बरसातका मौसम नहीं है, फिर भी लोग वहाँ छाता लगाकर क्यों चलते हैं? कारण है—गन्दगी। मान लीजिए आप

बाजारसे लौट रहे हैं, अचानक ऊपरसे कूड़ेकी बरसात हो गयी। यह बात अच्छी तरह जान लीजिए—बनारसी तीन मंजिल या चार मंजिले परसे बिना नीचे झांके थूक सकता है, पानी फेंक सकता है और कूड़ा गिरा सकता है। दूकान झाड़ बटोरकर आपके चेहरेपर सारा गर्द फेंक सकता है। यह उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है; नीचे इस सत्कार्यसे घायल व्यक्ति जब गालियाँ देता है तब सुनकर भाई लोग प्रसन्न हो उठते हैं। उनका रोम-रोम गाली देनेवालेको साधुवाद देगा। अगर कहीं वे सज्जन चुपचाप चले गये तो इसका उन्हें अपार दुःख होगा और उस दुःखको मिटानेके लिए मुखसे अनायास ही निकल जायगा—'मुर्दार निकसल !'

किसी-किसी गलीमें बनारसी रईसोंका पनाला इस अदासे चूता है कि फुहारेका मजा आ जाता है! गरमीके दिनोमें रातको ऐसी गलियोंसे गुजरना और खतरनाक होता है। सोते समय 'शंका समाधान' के लिए बनारसी अपनेको अधिक कष्ट नहीं देगा। परिणाम स्वरूप छतके पनालेसे आपपर 'शुद्ध गंगाजल' बरस सकता है। गुस्सा उतारनेके लिए ऐसे घरोंमें आप घुसनेकी हिम्मत नहीं कर सकते। एक तो बाहरका भारी दरवाजा बन्द है, दूसरे भीतर जानेपर भी यह पता चलना मुश्किल है कि यह सत्कार्य किसने किया है? मुँह आपका है, गालियाँ बक लीजिए और राह लीजिए, बस! खासकर नंगे पैर चलना तो और भी मुश्किल है। घरके बच्चे 'दीर्घशंका' गलियोंमें रातको कर देते हैं।

अगर इन गलियोंमें भगवान् शंकरके किसी मस्ताने वाहनसे भेंट हो गयी अर्थात् उसने नाराज होकर आपको हुरपेटा तो जान बचाकर भागना मुश्किल हो जायगा। खासकर उन गलियोंमें जो आगे बन्द मिलती हैं। क्योंकि आप पीछे भाग नहीं सकते, आगे रास्ता बन्द है, बगलके सभी मकानोंमें भीतरसे भारी सांकल लगा है और इधर सांड़ महाराज हुरपेटे आ रहे हैं! सालमें दो-एक व्यक्ति इन सांड़ोंके कारण काशी-लाभ करते हैं। लगे हाथ एक उदारण सुन लीजिये। अब्राहिम लिंकनके बाद

जनरल ग्रांट अमेरिकाके राष्ट्रपति हुए थे। एकबार जब वे हिन्दुस्तानमें दौरेपर आये तब बनारस भी आये थे। उन्होंने इस शहरको 'ए सिटी आफ लेन्स' अर्थात् गलियोंका शहर कहा है। कहा जाता है कि उनकी पत्नीको शंकर भगवान्के वाहनने अपने सींगपर उठा लिया था।

कहा जाता है कि राजा रामचन्द्रके सुपुत्रों (लव और कुश) से बुरी तरह शिकश्त खाकर पवनसुत हनुमानजी अपनी बिरादरीके साथ बनारसमें आकर बस गये हैं। आज वे इन गलियोंमें क्रीड़ा-स्थल बनाकर परम प्रसन्न हैं। ऐसी घटनाएँ प्रायः सुननेमें आती हैं कि गलीसे गुजरते समय अचानक ऊपर छतसे पत्थरका बड़ा रोड़ा सिरपर आ गिरा और बड़ी आसानीसे स्वर्गमें सीट रिजर्व हो गयी। असलमें यह पवनसुतके वंशजोंका महज खिलवाड़ है। 'खिलवाड़'में अगर कोई सीधे स्वर्ग पहुँच जाता है तो वह अपराध कैसे हो सकता है? पवनसुतके वंशजोंका तर्क कानून शास्त्रियों-को घपलेमें डाल देता है। इस आसमानी खतरेसे बचनेके दो ही उपाय हैं—एक तो सिरपर फौजियोंवाली लोहेकी टोपी या फिर आपका अपना भाग्य! क्योंकि इस तरहकी फौजदारीकी घटना किसी थानेमें दर्ज नहीं होती और न इसके मुकदमें अदालतमें स्वीकार किये जाते हैं।

इन गलियोंका नामकरण और उनकी दूरोको यदि आप नजर अन्दाज़ करें तो बनारसके पोस्टल विभागकी प्रशंसा करेंगे। हर बनारसी अपनेको 'सरनाम्' (प्रसिद्ध) समझता है। मुहल्लेका एक व्यक्ति समूचे मुहल्लेकी जानकारी रखता है। उसका विश्वास है कि मुहल्लेके डाकियासे मुख्यमंत्री तक उसके नामसे परिचित हैं। काशीमें दसपुतरिया गली महज ८–१० मकानोंका एक मुहल्ला है, पर वहाँके रहनेवालोंको दसपुतरिया गलीके नामपर पत्र मिल जाते हैं। इसप्रकार छोटी-छोटी गलियाँ यहाँ काफी प्रसिद्ध है। नगरपालिका भले ही नेताओंके नामपर गलियोंका नामकरण करे, पर बनारसवाले अपनी पुरानी परम्पराको नहीं बदल सकते।

इन गलियोंमें गर्मीके दिनमें शिमलेका मजा, जाड़ेमें पुरीका मजा और बरसातमें पहाड़ी स्थानोंका मजा, अनायास मिलता रहता है। यही वजह है कि बनारसी लोग पहाड़ी स्थानोंमें कभी नहीं जाते। रहा गन्दगीका प्रश्न—सो कहाँ नहीं है। जिस गलीमें इमलीके बीज बिखरे हों, समझ लें इस गलीमें मद्रासी रहते हैं। जिस गलीमें मछली महँकती हो, वह बंगालियोंका मुहल्ला है। जिस गलीमें हड्डी लुढ़की हो वह मुसलमान दोस्तोंका मुहल्ला है। इसप्रकार हर गलीमें प्रत्येक वर्गका 'साइनबोर्ड' लटकता रहता है। अध्ययन करनेवालोंको इन साइनबोर्डोंसे बड़ी 'हेल्प' मिलती है। मदनपुरा, पांडे हवेली, सोनारपुरा आदि मुहल्लोंमें साड़ियाँ बनती हैं और रानीकुआँ, कुंजगली आदि मुहल्लोंमें बिकती हैं। गोविन्दपुरा, राजादरवाजा रानीकुआँ, कोदईकी चौकीमें सोने-चाँदीका व्यवसाय होता है। कचौड़ी गलीकी कचौड़ी, ठठेरी बाजारके पीतलके वर्तन, विश्वनाथ गलीकी चूड़ियाँ, लकड़ीके खिलौने भारतमें प्रसिद्ध है। मिश्रपोखरा स्थित जर्देके कारखाने, लोहटिया और नखासमें लोहे लकड़ीका व्यवसाय होता है। अधिक दूर क्यों, काशीमें मंगलामुखियोंका व्यवसाय भी गलियोंमें ही होता है। दालमण्डी—छत्तातले, मडुवाडीहमें आशिक लोग नित्य शामको जुटा करते हैं।

मतलब यह कि बनारसकी प्रसिद्धि जिन वस्तुओंके कारण है, उन वस्तुओंका व्यवसाय गलियोंमें ही होता है।

: बनारसके मन्दिर :

धार्मिक ग्रन्थोंकी गवाहीपर यह कन्फर्म हो चुका है कि हिन्दुओंके पूरे तैंतीस करोड़ देवता हैं। लेकिन आजतक इन तैंतीस करोड़ देवताओंकी सम्पूर्ण परिचय-तालिका किसी भी 'धार्मिक गजेटियर' में प्रकाशित नहीं हुई है। भारतके किसी भी पण्डितने यह दावा नहीं किया कि मैं तैंतीस करोड़ देवताओंके नाम बता सकता हूँ। धर्मके नामपर अपनी जेब हल्की करनेवाले महानुभावोंको चाहिए कि वे इन देवताओंकी एक सूची जरूर तैयार करायें। यह तथ्य प्रकट होना आवश्यक है कि तैंतीस कोटि फीगर्स-में कितने अपनी उपासना करा रहे हैं और कितनेके सामने 'टू लेट' बोर्ड लटक रहा है!

सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि इतने देवताओंकी उत्पत्ति कैसे हुई जबकि प्राचीनकालमें भारतकी आबादी बहुत कम रही? धार्मिक ग्रंथोंमें जब तैंतीस करोड़ देवताओंकी चर्चा है तब बात झूठ नहीं हो सकती। भारत मूलतः धर्म-प्राण देश है। यहाँकी अधिकांश आबादी आस्तिकोंकी है। नास्तिक तो मूर्ख होते हैं, अतः उनकी चर्चा ही व्यर्थ है। इसलिए तैंतीस करोड़ देवताओंके अस्तित्वके बारेमें अविश्वास करनेकी गुंजाइश नहीं।

मेरे एक मित्र हैं, मैंने उनसे अपनी शंका प्रकट की तो बोले—जिस प्रकार रेनाल्ड साहबने ४८ भागमें 'लण्डन रहस्य' लिखा है—उसे देखकर हमारे बनारसी रईस बाबू देवकीनन्दन खत्रीने 'चन्द्रकान्ता' और 'भूतनाथ' मिलाकर ५२ भाग लिखे हैं ठीक उसी प्रकार जब आर्य अर्थात् हिन्दू यहाँ आये तब अनार्योंके ३२ करोड़ देवताओंकी संख्या देखकर सम्भव है, उन्होंने अपने देवताओंकी संख्या ३३ करोड़ बना ली हो। यद्यपि बात कुछ जमी नहीं, तथापि मेरी शंका बोलती बन्द हो गयी।

इन देवताओंकी उत्पत्तिका विषय जितना रहस्यमय है, उतना ही इनकी आवासभूमि भी। यदि कोई फर्स्ट डिविजनर मास्टर आफ आर्ट्स् इस विषयपर थीसिस लिखे तो अनायास उसे डाक्टरकी उपाधि मिल सकती है। जाति विशेषके विषयपर अन्वेषण करनेवाले विद्यार्थियोंको जब स्कालरशिप मिलती है तब इस विषयपर आसानीसे मिल सकती है। अब तक कतिपय देवताओंके निवासस्थलका पता चला है, जैसे रामचन्द्रजीका अयोध्या, कृष्णका मथुरा, कामक्षाका कामरूप, जगन्नाथका पुरी, लक्ष्मीका बम्बई, कालीका कलकत्ता, सीताजीका जनकपुरी और शिवका काशी। मुझे आशा है इस सड़कपर समयानुसार कोई महाशय अवश्य थीसिसका खच्चर हाँकेंगे।

मन्दिरोंकी नगरी

काशीको साक्षात् शिवपुरी कहा गया है। यहाँका प्रत्येक कंकड़ शंकर कहा जाता है। कुछ लोग तो इसे मन्दिरोंकी नगरी भी कहते हैं। संख्या-अन्वेषकोंके मतानुसार यहाँ मकानोंसे अधिक मन्दिरोंकी संख्या है। शायद यह बात ठीक भी है क्योंकि सड़क चौड़ी करनेके नामपर इम्पूवमेण्ट ट्रस्ट मकान गिरा सकता है, दूकान तुड़वा सकता है और बगीचेका घेरा सड़कमें ले सकता है, लेकिन मन्दिर-मसजिदका अंश छूनेकी हिम्मत उसमें नहीं है। कौन मन्दिरोंके देवता और भक्तोंसे मुफ्त झगड़ा मोल लेने जाय!

बनारसमें कितने मन्दिर हैं अथवा यहाँकी आबादीमें कितने आस्तिक हैं, इस बातका अन्दाजा किसी परिवारमें कुछ दिन बिना रहे नहीं लग सकता। गृहस्वामी रोजी-रोजगारमें बरकत हो इस उद्देश्यसे नित्य सवेरे गंगा स्नानकर अन्नपूर्णाके मन्दिरमें पण्डितजीसे जाप करवाते हैं, दूकानमें गणेशजीको माला पहनाते हैं, धूप सुंघाते हैं और अन्तमें 'शुभ-लाभ' शब्दके आगे श्रद्धासे सर झुकाते हैं। गृहस्वामिनी नाती-पोतेका मुँह देखने-

के लिए और पति-पुत्रके कुशल-मंगलके लिए दुर्गा भवानीका दर्शन करती हैं। साहबजादेकी नसोंमें जवानी अंगड़ाइयाँ लेती है, इसलिए वे महावीर-जीके उपासक हैं, संकट मोचन नियमित दर्शन करते हैं और सवा पाव दलबेसनका जलपान करते हैं। पुत्रवधू माँ बनने तथा पतिको वशमें रखनेके लिए तुलसीके पौधेको सींचती है, पीपलके पेड़में पानी देकर फेरी लगाती है।

प्राचीनकालमें भले ही हमारे घरोंमें एक ही कुल देवता रहे हों, लेकिन आज एकसे अधिक देवताका पूजन प्रत्येक परिवारमें होता है। पता नहीं, कब कौन देवता संतुष्ट होकर छप्पर फाड़कर धन दे दे या मनोकामना पूरी कर दे! कुछ लोग ऐसे भी हैं जो एक अर्सेतक एक देवताके उपासक बने रहनेके बाद जब कुछ नहीं पाते तब मित्रोंकी रायके अनुसार अपने पुराने देवताको रिटायर्डकर किसी दूसरे देवताके उपासक बन जाते हैं। आज जिन परिवारोंमें एकसे अधिक देवताओंका पूजन होता है, वहाँ देवताओंका बड़ा रंग रहता है। प्रत्येक देवताका सिंहासन, पंचपात्र, शंख, धूपदान और पहनावा अलग-अलग होता है। यहाँतक कि रुचिके अनु-सार उन्हें नैवेद्य भी चढ़ाये जाते हैं।

मन्दिरोंकी अधिकता क्यों?

यह तो हुई गृह-देवताओंकी कहानी। इसके अलावा सार्वजनिक मन्दिरोंकी अलग कहानी है। जिस प्रकार बनारसके हर चौराहेपर खचियों डाक्टर, दर्जनों पानवाले और सैकड़ों खोमचेवाले मिलते हैं, ठीक उसी प्रकार मन्दिरोंकी भरमार है। काशीमें प्राण त्यागना स्वर्गमें सीट रिजर्व करानेका सुगम मार्ग माना जाता है। कहा जाता है, ऐसे पुण्यात्माओंके वंशज अपने बाप-दादाकी स्मृतिमें—जो कि उनकी अन्तिम इच्छा रहती है, पूरी करनेके लिए—मन्दिर बनवा देते हैं। भले ही आगे चलकर उन

मन्दिरोंमें बनारस शहरके स्थायी कोतवाल भैरवनाथ अपना अस्तबल बना लें। आज पंचकोशीमें ऐसे अनेक शिव मन्दिर हैं जहाँके शिव अक्षत-फूलको कौन कहे पानीके लिए तरसते हैं। पंचक्रोशी करनेवाले यात्री मन्दिरतक न जाकर सड़कपरसे ही उनके मन्दिरके सामने पानी छिड़क-कर आगे बढ़ जाते हैं और रातको उन मन्दिरोंमें भैरवनाथके खासवाहन (कुत्ता) सोते रहते हैं। चूँकि शंकर साक्षात् आशुतोष हैं, इसलिए केवल पानी पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं।

'राजतरंगिणीके' अध्ययनसे पता चलता है कि प्राचीन कालमें काश्मीरके प्रायः सभी नरेश अपने नाम पर, अपनी प्रियतमके नामपर और अपने पूर्वजोंके नामपर मन्दिर बनवाया करते थे। इस प्रकार उनके नाम देवी-देवताकी कोटिमें आ जाते थे। शायद उन लोगोंने गीताका अध्ययन किया था, इसीलिए 'नराणां च नराधिपम्' श्लोकको यथार्थवादका रूप दे देते रहे। यह परम्परा केवल काश्मीरमें ही नहीं, अपितु समस्त भारतमें रही। फिर काशी जैसे मोक्षधाममें लोग यह परम्परा लागूकर पुण्य लूटनेमें पीछे क्यों रहते? जो लोग मन्दिर बनवानेमें असमर्थ होते हैं, वे मन्दिरोंकी दीवालों या फर्शपर संगमरमरका एक टुकड़ा चिपकवाकर पुण्यात्मा बन जाते हैं, जैसे किसी तीर्थयात्रीके वापस आनेपर पैर धुलाने-वाला बिना तीर्थ गये पुण्यका भागी बन जाता है। बनारसके अधिकांश मन्दिरोंकी यही हालत है। एकने मन्दिर बनवाया; दूसरेने फर्श, तीसरेने घंटा टँगवाया, चौथेने चहारदीवारी बनवायी और पाँचवेंने मरम्मत या सफेदी करवा दी। इस प्रकार मन्दिरोंका निर्माण और जीर्णोद्धार होता रहता है। अधिक दूर क्यों-स्वयं काशी विश्वनाथ मन्दिरकी यही हालत है। जबसे वे ज्ञानवापीके कुएँमें गिर पड़े, वहाँसे फिर निकले नहीं। पुराना मन्दिर मसजिदके कारण अपवित्र हो चुका था, इसलिए वहाँसे हटकर नवीन मन्दिर रानी अहल्या बाईने बनवाया। घंटा टँगवाया नेपाल नरेशने, मन्दिरके ऊपर सोनेका पत्तर चढ़वाया महाराज रणजीत सिंहने और नौबत-

खाना बनवाया अजीमुल मुल्कअली इब्राहीम खांने। कहनेका मतलब बाबा विश्वनाथकी सारी सामग्री दानकी है। रातको आरतीका प्रबन्ध नाटकोट छत्रवालोंकी ओरसे होता है। यही हाल अन्नपूर्णा मन्दिरका है। वहाँका एक हिस्सा और मूर्तियाँ श्री पुरुषोत्तम दास खत्रीकी बनवायी हुई हैं।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो न तो मन्दिर बनवा सकते हैं और न जीर्णोद्धार करा पाते हैं; ऐसे लोग मन्दिरोंकी दीवालों पर अपना नाम-ग्राम लिखकर भक्ति प्रदर्शित करते हैं। मुमकिन है, उनका यह कार्य यमराजके पुण्यवाले खानेमें दर्ज हो जाता हो!

इतिहासकारोंका मत है कि अकबरके शासनकालमें अकेले राजा मान-सिंहने बनारसमें सवालाख मन्दिरोंका निर्माण करवाया था। उनमेंसे अकबरके परपोते औरंगज़ेब और उसके सैनिकोंने कितनोंको तोड़ डाला; इसका रेकार्ड किसी भी इतिहासमें प्राप्य नहीं है। काशीके पण्डित प्रत्येक मन्दिरको सतयुग-द्वापर और त्रेताके समयका है—बताते हैं। पुरातत्त्ववाले काशीके मन्दिरोंके बारेमें कहते हैं कि सभीका निर्माण काल ३०० वर्षके अन्तर्गत है। केवल कर्दमेश्वरका मन्दिर इसका अपवाद है। कर्दमेश्वरका मन्दिर दसवीं शताब्दिका है। लेकिन कुछ प्रगतिशील लोग इस प्रश्नपर शंका प्रकट करते हैं कि तुलसीदासके युगमें अर्थात् १६ वीं शताब्दिके समय जब भदैनी शहरका बाहरी अंचल माना जाता था तब कर्दमेश्वर जैसे स्थानमें यह मन्दिर कैसे बन गया? अभी तक यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों खड़ा है—इसे अभी हल करके बैठाया नहीं जा सका। कहनेका मतलब पुरातत्त्व वालोंका कथन और प्रगतिशील व्यक्तियोंकी शंका अपनी-अपनी जगह ठीक है।

यह निर्विवाद सत्य है कि बनारसमें मन्दिरोंकी अधिकता इसलिए है कि भारतके सभी धर्मप्राण व्यक्ति जिन्हें कुछ काम नहीं था, यहाँ आकर मन्दिर बनवाते रहे अथवा अपनी यह सद्-इच्छा मरते समय अपने वंशजों

पर प्रकट कर देते रहे ताकि उनके वंशज काशीमें जाकर उनके नामपर मन्दिर जरूर बनवा दें। यदि पुरातत्ववालोंका यह विचार सही मान लिया जाय कि सभी मन्दिर ३०० वर्षके भीतर बने हैं तो यह मान लेना पड़ेगा कि इसके पहले के सभी मन्दिर या तो मसजिदोंके रूपमें परिणत हो गये या लुप्त हो गये, जैसे गंजी खोपड़ीसे बाल लुप्त हो जाता है। फिर इन ३०० वर्षोंमें जब कि भारत गुलाम रहा—पैसेकी कमी रही, चारों तरफ मार-काट मची हुई थी, इतने मन्दिर कैसे बन गये? इस विषयपर कई रायें हैं जिनमें एक राय मुझे अधिक संगत प्रतीत होती है। वह है—बनारसकी गन्दगी।

बनारसमें गन्दगी

बनारसमें गन्दगीके दो कारण है—पहला नगरपालिकाकी असीम 'कार्यपटुता' और दूसरा बनारसियोंकी आदत। बनारसकी किसी भी गलीसे आप गुजरिये उधरके सभी त्रिमुहानी, कोना अथवा सन्नाटावाले स्थानोंमें कर्मनाशा बहती है। सेण्टसे तर रूमाल भी नाकपर बिलबिलाने लगता है। कुछ प्रमुख स्थानोंमें नगरपालिकाका कूड़ा गोदामघर है—जैसे बैंकवाले बड़े-बड़े फर्मोंका रखते हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जिस तरह बैंकवाले, उतना ही माल पार्टीको उठाने देते हैं जितने मालका भुगतान पार्टी करती है, ठीक उसी प्रकार नगरपालिका भी जब जितना जरूरत समझती है उतना ही कूड़ा इकट्ठा करती है और उठाती है। नगरपालिकाकी सरकारी गाड़ी (कूड़ा ढोनेवाली भैंसा गाड़ी) जिस वक्त किसी संकरी गलीसे गुजरती है, ट्रैफिक रुक जाता है।

नगरपालिकाकी इस आदतको छुड़ानेके लिए नागरिकोंने दूसरा कदम अख्तियार किया। जिन क्षेत्रोंमें कूड़ेका अम्बार लगा रहता था, वहाँके नागरिक पहले उन कूड़ोंके ऊपर दरी बिछाकर नगरपालिकाके मेम्बरों और चेयरमैनको बुलाकर सभा करवाते रहे। इससे भी जब समस्या हल नहीं

हुई तो चन्दा इकट्ठाकर एक दिन वहाँ एक मन्दिर बनवा दिया। फिर उसमें किसी देवताको प्रतिष्ठित कर दिया। इसमें महावीरजी, चौरामाई और शंकर प्रमुख हैं। इसके बाद कुछ लोग नियमित रूपसे वहाँ पूजापाठ हवन करने लगे। कथाएँ हुईं। अर्सेतक भीड़-भाड़ होती रही। इस प्रकार वह स्थान पवित्र हो गया। इतनी गनीमत है कि नगरपालिकाके अधिकांश अधिकारी आस्तिक हैं, खासकर कूड़ा—अधिकारी; इसलिए जो-जो स्थान इस तरह पवित्र होते गये, उन्हें पुनः अपवित्र करनेकी चेष्टा नहीं की गयी। इस प्रकार बनारसमें मन्दिरोंकी संख्या बढ़ती गयी।

काशीके प्रमुख मंदिर

बनारसमें सिर्फ विश्वनाथ मन्दिर ही नहीं है, बल्कि समस्त भारतके देवी-देवता और तीर्थस्थान भी हैं। यदि आप चारों धाम नहीं कर सकते अथवा समस्त देवी-देवताके दर्शनसे वंचित हैं तो आज ही काशी चले आइये। बद्रीनाथ, केदारनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथ जी, कामच्छा, काली, पशुपतिनाथ, कृष्ण कन्हैया, द्वारकाधीश, महालक्ष्मी और दुर्गा आदिके मन्दिरोंको देख लीजिए। गंगोत्री, पुष्कर, वैद्यनाथ, भास्कर और मान-सरोवर आदि तीर्थस्थान देख लीजिए

तुलसीदासजीका बनवाया हुआ संकटमोचनका मन्दिर जहाँका बेसन का लड्डू परम प्रसिद्ध है, गोपाल मन्दिर जहाँका ठोर (एक प्रकारकी मिठाई) बिना दाँतका व्यक्ति खा जाता है और दुर्गाजीका मन्दिर जहाँ रामजीकी सेना रहती है—बनारसके प्रमुख मन्दिरोंमें है। काशी करवटका शिव मन्दिर तो इतना प्रसिद्ध है कि दोपहरके वक्त बिजलीकी रोशनीमें दर्शन देते हैं। यहाँका इतिहास आज भी बड़े-बूढ़ोंकी जबान पर है। बराहीदेवीके मन्दिरमें औरतें नहीं जाने पातीं। कहा जाता है किसी समय वे एक लड़कीको निगल गयी थीं। चूँकि उनके मुँहमें उस लड़कीकी

चुनरी लटकी हुई थी, इसलिए यह पता चल गया कि वे निगल गयी हैं, वर्ना लड़कीका गायब होना रहस्य बना रह जाता। इस घटनाके बादसे औरतें ऊपरसे दर्शन करती हैं, केवल पुरुष भीगे हुए वस्त्र पहनकर नीचे जाते हैं। काशीमें आदि विश्वेश्वरका मन्दिर है जहाँ गोपाष्टमीके समय शहरकी वारांगनाएँ मुफ्तमें आकर मनोविनोद करती हैं। पास ही सत्यनारायण मन्दिरमें श्रावणके झूलेमें भगवान्‌का ऐसा लाजवाब शृङ्गार होता है कि देखकर भगवान्‌के भाग्यपर ईर्ष्या होती है। लाट, भूत, आनन्द और बटुक आदि आठ भैरव, सोलह विनायक और नव दुर्गाके मन्दिर अपने-अपने मौसममें बनारसके नागरिकोंको बुलाते हैं।

काशीमें कलाकी दृष्टिसे दो मन्दिर दर्शनीय हैं। एक भारतमाताका मन्दिर, दूसरा नेपाली मन्दिर। यह तो अपनी-अपनी भावना है कि कुछ लोग मन्दिरोंका निर्माण बेकार समझते हैं, बुर्जुआवादी और पोंगापन्थी समझते हैं। उनका ख्याल है कि मन्दिरोंमें अनाचार होते हैं। लेकिन आस्तिकजन (जिनमें मैं स्वयं भी हूँ) ऐसा नहीं मानते। ये दोनों मन्दिर जीवनके लिए एक दर्शन है। एकसे देश भक्ति, दूसरेसे काम-जीवनकी शिक्षा मिलती है।

बनारसमें दो मन्दिर ऐसे भी हैं जिनके पास बैंक हैं। उनमें एक राम रमापति और दूसरा शिव बैंक है। इन बंकोंमें राम नाम और शिव नाम जमा होते हैं—उधार दिये जाते हैं। सोचिये–विश्वमें ऐसे बैंक भला कहीं हैं।

इन मन्दिरोंके अलावा कुछ ऐसे मन्दिर हैं जिनकी पूजा वे लोग करते हैं जो अच्छे मन्दिरोंमें जा नहीं पाते अथवा बड़े देवताओं पर जिनका विश्वास नहीं होता। ऐसे लोग मुड़ीकट्टा बाबा, भैंसासुर बाबा, ताड़देव, पीरबाबा और बेचूबीर आदि स्थानोंमें जाकर शराब-गाँजा भी चढ़ाते हैं, पराठें और मोहन भोगका भी भोग लगाते हैं। इनके देवता सब कुछ

प्रेमसे दिया नैवेद्य स्वीकार कर लेते हैं। बरसातके मौसममें ये सभी देवता कजरी सुनते हैं, वेश्याका नाच देखते हैं और भजन भी सुनते हैं। देवता श्रद्धाके प्रेमी होते हैं वस्तुके नहीं। इन देवताओंके उपासकोंकी संख्या भी कम नहीं है।

अब तो पूज्य करपात्रीजी काशीमें व्यक्तिगत विश्वनाथ मन्दिरका निर्माण कर चुके और उधर विश्वविद्यालयमें नगरका सबसे ऊँचे शिखरवाला विश्वनाथ मन्दिर बन रहा है। इस प्रकार अब बनारसमें तीन-तीन विश्वनाथ मन्दिर बन गये। एक सभी हिन्दुओंका, दूसरा सवर्ण हिन्दुओंका और तीसरा विश्वविद्यालयके छात्रोंका। अब किसीको विश्वनाथजीसे शिकायत नहीं रहेगी कि महाराज, मुझे आपका दर्शन नहीं मिलता।

: बनारसके मकान :

बनारसके मकानोंपर कुछ लिखनेके पहले एक बात साफ कर देना चाहता हूँ। मेरा मकसद यह नहीं है कि बनारसमें कहाँ, किस मुहल्लेमें, कितने किरायेपर, कौन-सा मकान या फ्लेट खाली है अथवा बिकाऊ है, इन सब बातोंकी रिपोर्ट पेश करूँ। काफी जोर-शोरके साथ अगर तलाश की जाय तो भगवान् मिल जायँगे, पर नौकरी और मकान नहीं। आजकल इन बातोंका ठेका अखबारोंके विज्ञापन मैनेजरोंने और हथुआ कोठीके रेण्ट कण्ट्रोलर साहबने ले रखा है। आपके दिमागमें यह ख्याल पैदा हो गया हो कि आपका भी बनारसमें 'इक बँगला बने न्यारा' और इस मामलेमें से आपकी मदद करूँगा (मसलन मकान बनवानेके नामपर सरकारसे किस प्रकार कर्ज लिया जा सकता है, यह सब तिकड़म बताऊँगा) तो आपको गहरा धोखा होगा। मैं तो सिर्फ बनारसके मकानोंका भूगोल और इतिहास बताऊँगा।

अब आप शायद चौंकें कि मकानोंका भूगोल-इतिहास कैसा ? मकान माने मकान। चाहे वह बम्बईमें हो या बनारसमें। लेकिन दरअसल बात यह नहीं है। मकान माने महल भी हो सकता है और झोपड़ी भी हो सकती है। बम्बईमें एक मकान अपने लिए जितनी जमीन घेरता है, बनारसमें उतनी जमीनमें पचास मकान बन सकते हैं। यह बात अलग है कि बम्बईके एक मकानकी आबादी बनारसके पचास मकानके बराबर है।

दूसरी जगह आप मकान देखकर मकानमालिकके बारेमें अन्दाजा लगा सकते हैं। मसलन वह बड़ा आदमी है, सरकारी अफसर है, दूकानदार है, जमींदार है अथवा साधारण व्यवसायी है। लेकिन बनारसके

मकानोंकी बनावटके आधारपर मकान मालिकके बारेमें कोई राय कायम करना जरा मुश्किल काम है।

मान लीजिए आपने एक मकान देखा, जिसमें मोटर रखनेका गैरज भी है। ख्वामख्वाह यह ख्याल पैदा हो ही जायगा कि मकान मालिक बड़े शानसे रहता है। रईस आदमी है। लेकिन जब आपकी उससे मुलाकात हुई तो नजर आया, गलियोंमें 'रामदाना क लेडुवा, पइसामें चार' की चलती-फिरती दूकान खोले हैं। राह चलते किसीकी शक्ल देख कर आपने नाक सिकोड़ ली, पर वही आदमी शहरका सबसे सज्जन और कई मकानोंका मालिक निकला। इसके विरुद्ध टैक्सीपर चलनेवाले, गैवर्डीनका सूट पहने सज्जन खपरैलके मकानमें किरायेपर रहते मिलेंगे।

बनारसमें अन्नपूर्णा मन्दिरकी बगलमें राममन्दिरके निर्माता श्री पुरुषोत्तमदास खत्री जब बाहर निकलते थे तब उनके एक पैरमें बूट और दूसरेमें चप्पल रहता था।

बाहरसे भव्य दीखनेवाला महल भीतर खण्डहर हो सकता है और बाहरसे कण्डम दीखनेवाला मकान भीतर महल हो सकता है। इसीलिए बनारसके मकानोंका भूगोल-इतिहास जानना जरूरी है।

भूगोल

अगर आपने आगरेका स्टेशन बाजार, लाहौरका अनारकली, बम्बईका मलाड, कानपुरका कलक्टरगंज, लखनऊका चौक, इलाहाबादका दारागंज, कलकत्तेका नीमतल्ला घाट और पुरानी दिल्ली देखा है तो समझ लीजिए उनकी खिचड़ी बनारसमें है। हर माडलके, हर रंगके और ज्योमेट्रीके हर अंशके कोणके मकान यहाँ हैं।

बनारस धार्मिक दृष्टिसे और ऐतिहासिक दृष्टिसे दो भागोंमें बँटा हुआ है। धार्मिक दृष्टिसे केदार खण्ड, विश्वनाथ खण्ड और ऐतिहासिक दृष्टिसे भीतरी-महाल बाहरी अलंग। प्राचीनकालमें लोग गंगा किनारे बसना

अधिक पसन्द करते थे ताकि टपसे गंगामें गोता लगाया और खट्से घरके भीतर । सुरक्षाकी सुरक्षा और पुण्य मुनाफेमें । नतीजा यह हुआ कि गंगा किनारे आबादी घनी हो गयी । आज तो हालत यह है कि भीतरी महाल शहरका अंग न होकर पूरा तिलस्म-सा बन गया है । बहुत मुमकिन है, 'चन्द्रकान्ता' उपन्यासके रचयिता बाबू देवकीनन्दन खत्रीको भीतरी महालके तिलस्मोंसे ही प्रेरणा मिली हो ।

काश ! उन दिनों इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट होता, तो हमारे बाप-दादे मकान बनवानेके नाम पर हमारे लिए तिलस्म न बनाते । चौड़ी सड़कोंको तंग गलियोंका रूप न देते । यदि इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट जैसी संस्था उन दिनों बनारसमें होती तो संभव था बनारस लन्दन या न्यूयार्क जैसा न सही, मास्को अथवा मेलबोर्न जरूर बन जाता ।

बुजुर्गोंका कहना है कि काशीकी तंग गलियाँ और ऊँचे मकान मैत्री भावनाके प्रतीक है । भूत-प्रेतकी नगरीमें लोग पास-पास बसना अधिक पसन्द करते थे ताकि वक्त जरूरतपर लोग एक दूसरेकी मदद कर सकें । मसलन आज किसीके घर आटा नहीं है तो पड़ोससे हाथ बढ़ाकर माँग लिया, रुपया उधार माँग लिया, नया पकवान बना है तो कटोरेमें रखकर हाथ बढ़ाकर पड़ोसीको दे दिया, कोई सामान मंगनीमें माँगना हुआ अथवा सूने घरका अकेलापन दूर करनेके लिए अपने-अपने घरमें बैठे-बैठे गप्प लड़ानेकी सुविधाकी दृष्टिसे भीतरी महालके मकान बनवाये गये हैं । इससे लाभ यह होता है कि चार-पाँच मंजिल नीचे न उतरकर सब काम हाथ बढ़ाकर सम्पन्न कर लिया जाता है । कहीं-कहीं पड़ोसियोंका आपसमें इतना प्रेम बढ़ गया कि गलीके ऊपर पुल बनाकर आने-जानेका मार्ग भी बना लिया गया है । यही वजह है कि भीतरी महालके मकानोंमें चोरीकी घटनाएँ नहीं होतीं । इस इलाकेमें रहना गर्वकी बात मानी जाती है । बनारसके अधिकांश रईस-सेठ और महाजन इधर ही रहते हैं । बाकी कुली-कबाड़ी और उचक्कोंके लिए बहरी अलंग है । लेकिन जबसे

बनारसकी सीमा वरुणा-असीकी सीमाको तोड़कर आगे बढ़ गयी है तबसे भीतरी महालकी स्थिति चिर विधवा-सी हो गयी है। भले ही गर्मीमें शिमलेका मजा मिले, पर आधुनिक युगके लोग उधर रहना पसन्द नहीं करते।

इसका मुख्य कारण है—यातायातके साधनोंकी कमी। आधी रातको आपके यहाँ बाहरसे कोई मेहमान आये अथवा सपत्नीक १२ बजे रात गाड़ीसे सफरके लिए जाना चाहें तो बक्सा बीबीके सिरपर और बिस्तर स्वयं पीठपर रखकर सड़क तक आइये, तब कहीं रिक्सा मिलेगा। भीतरी महालमें रातको कौन कहे, दिनमें भी कुली नहीं मिलते। गलियाँ इतनी तंग हैं कि कोई भी गाड़ी भीतर नहीं जाती। दुर्भाग्यवश आग लगने अथवा मकान गिरनेकी दुर्घटना होनेपर तत्काल सहायता नहीं मिलती। हाँ, यह बात अलग है कि मरीज दिखानेके लिए डाक्टरोंको ले जानेमें सवारीका खर्च नहीं देना पड़ता।

जिस प्रकार एक ही शक्लके दो आदमी नहीं मिलते, ठीक उसी प्रकार बनारसके दो मकान एक ढंगके नहीं हैं। कोई छः मंजिला है तो उसके बगलमें एक मंजिला मकान भी है। किसी मकानमें काफी बरामदे हैं तो किसीमें एक भी नहीं। भीतरी महालके मकानोंका निचला हिस्सा सीड़न, अन्धकार और गन्दगीसे भरा रहता है। बहरी अलंगके मकानोंकी हालत कुछ अच्छी है।

पुराने जमानेमें बाप-दादोंके पास धुँआधार पैसा रहा, औलादके लिए एक महल बनवा गये। बेचारे औलादकी हालत यह है कि राशनकी दूकानमें गेहूँ तौल रहा है। उसे इतनी कम तनख्वाह मिलती है कि मरम्मत कराना तो दूर रहा, दीपावलीपर पूरे मकानकी सफेदीतक नहीं करा पाता।

बनारसमें छोटे-बड़े सभी किस्मके मकानदारोंकी इज्जत एक-सी है। कोई बड़ा मकानवाला छोटे मकानवालेकी ओर उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकता। यहाँतक कि बड़े मकानमें रहनेवाले अपने मकानसे पड़ोसके छोटे

मकानमें झाँककर कुछ देख नहीं सकते। अगर आपने ऐसी गलती की तो दूसरे दिन पूरा परिवार लाठी लेकर आपके दरवाजेपर आ डटेगा, पहले तो शब्दकोशके तमाम शब्दोंके द्वारा आपका स्वागत करेगा। अगर आप तावमें आकर बाहर चले आये तो खैरियत नहीं। इसके बाद भलेही आप ६६ में (पुलिस उड़ाका दल) फोन कीजिये, थानेमें रिपोर्ट लिखवाइये और दावा दायर कीजिये। छोटे मकान मालिकोंकी इस हरकतसे आजकल लोगोंने ऊँचा मकान बनवाना छोड़ दिया है। बनारसमें दूसरोंके मकानमें झाँकना शराफतके खिलाफ काम समझा जाता है।

एक कानून है—हक सफा। अन्य शहरोंमें यह कानून लागू है या नहीं, यह तो नहीं मालूम, पर बनारसमें इस कानूनके जरिये कमजोर पड़ोसीको परेशान किया जा सकता है। अगर कोई मकान बेच रहा है तो उसे अपने पीछे, अगल-बगल तीनोंको इत्तलाकर उनसे सलाह लेकर बेचना पड़ेगा। वह चुपचाप यह काम नहीं कर सकता अन्यथा अड़ंगा लगा देनेपर वह मकान किसी भी कीमतमें नहीं बिक सकता।

इतिहास

काशीके प्राचीन इतिहाससे पता चलता है कि काशी पहले वरुणा नदीके तटपर थी। इसका निरीक्षण फाइयान, ह्वेनच्याँग और अलबैहाकी तक कर गया है।

काशी कितनी प्राचीन है, यह तो राम जाने। लेकिन यहाँका प्रत्येक मुहल्ला इतिहाससे सम्बन्धित है और प्रत्येक मकान ऐतिहासिक है। इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि सरकारने जिन मकानोंको महत्त्वपूर्ण समझा है, उनके लिए आदेश दिया है कि वे मकान गिरने न पायें, अगल-बगल, इधर-उधर चारों तरफसे चाँड़ लगाकर वे गिरनेसे रोका जाय। आज अधिकांश मकान इस हुकमके कारण अपने जगहपर खड़े हैं, उन्हें गिरनेसे रोका गया है। बनारसके १० प्रतिशत मकान जिन्हें नींद आ रही थी, चाँड़ लगवानेके कारण सुरक्षित हैं।

कुछ भाई लोगोंके मकान इस किस्मके हैं कि अगर उनके तीनों तरफका मकान गिर जाय तो उनका मकान नङ्गा हो जायगा। कहनेका मतलब पड़ोसीके मकानसे ही भाई साहब अपना काम चला लेते हैं और उनके दबावमें इनके मकानका लिफाफा खड़ा है।

बनारसका प्रत्येक मुहल्ला ऐतिहासिक है। मसलन जब दाराशिकोह यहाँ पढ़ने आया था तब जहाँ ठहरा उसका नाम दारानगर हो गया। औरंगजेब आया तो औरंगाबाद बसा गया। नवाब सआदतअली खां बनारसमें आकर जहाँ ठहरे, उस स्थानका नाम नवाबगंज हो गया। उनके घसियारे जहाँ ठहरे वह स्थान घसियारी टोला और खोजा जहाँ ठहरे खोजवाँ हो गया। बुल्लासिंह डाकूके नामपर बुलानाला महाल बस गया। मानमन्दिर, मीरघाट, राजघाट और तुलसीघाटके बारेमें सभी जानते हैं। डाक्टर सम्पूर्णानन्दके मतानुसार अगस्तकुण्डामें महामुनि अगस्त्य रहते थे। इस प्रकार देखा जाय तो बनारसका प्रत्येक स्थान पौराणिक और ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

चेतगंज मुहल्ला चेतसिंहके नामपर बसा तब जगतसिंहको अपने नाम-पर मुहल्ला बसानेकी सूझी। नतीजा यह हुआ कि सारनाथके धर्मराजिक स्तूपको उखाड़कर उन्होंने जगतगंज मुहल्ला बसा डाला। कुछ लोग कहते हैं, इसे जगतसिंहने नहीं बसाया है, वे सिर्फ यहाँ रहते थे। यह मुहल्ला तो बौद्धकालीन वाराणसीकी बस्ती है। अब इसका ठीक-ठीक निर्णय तभी हो सकता है जब जगतगंजको खुदवाकर उसकी जाँच पुरातत्त्व विभागवाले करें।

बनारसमें तीन किस्मके मकान बने हैं। पत्थरके बने मकान बौद्धकालके बादके हैं; लखवरिया ईटोंवाले मकान बौद्ध युगके पूर्वसे मुगलकाल तकके हैं। नम्बरिया ईटोंके बने मकान ईस्टइण्डिया कम्पनीसे लेकर १४ अगस्त सन् १९४७ ई० तक बने हैं। आजकलके नम्बरिया ईंटोंकी साईज ९×४॥ इंचके हो गयी हैं। इस साइजके ईंटोंके बने मकान कांग्रेसी शासनकालके हैं।

यद्यपि काशीमें मुहल्ले और मकान काफी हैं, पर हवेली साढ़े तीन ही हैं। महल कई हैं। हवेलियोंमें देवकीनन्दनकी हवेली, काठकी हवेली, काश्मीरीमलकी हवेली और विश्वम्भरदासकी हवेली काशीमें प्रसिद्ध हैं। इनमें आधी हवेली कौन है, इसका निर्णय आजतक नहीं हुआ। पांडे हवेलीको हवेली क्यों नहीं माना जाता, यह भी बताना मुश्किल है, जब कि इस नामसे भी एक मुहल्ला बसा हुआ है।

यदि आपको भ्रमणका शौक है और पैसे या समयके अभावसे समूचा हिन्दुस्तान देखनेमें असमर्थ हैं तो मेरा कहना मानिये, सीधे बनारस चले आइए। यहाँ हिन्दुस्तानके सारे प्रान्त मुहल्लेके रूपमें आबाद हैं। हिन्दुओंके तैंतीस करोड़ देवता काशीवास करते मिलेंगे, गंगा उत्तरवाहिनी है, तिलस्मी मुहल्ला है, ऐतिहासिक मकान है और जो कुछ यहाँ है, वह दुनियाके सात पर्देमें कहीं नहीं है। बनारस-दर्शनसे भारत-दर्शन हो जायगा। यहाँ एकसे एक दिग्गज विद्वान् और प्रकाण्ड पण्डित हैं। प्रत्येक प्रान्तका अपना-अपना एक मुहल्ला भी है।

बंगालियोंका बंगालीटोला, मद्रासियों तथा दक्षिण भारतीयोंका हनुमान घाट, केदारघाट, पंजाबियोंका लाहौरीटोला, गुजरातियोंका सूतटोला, मारवाड़ियोंका नन्दनसाहू गली, कन्नड़ियोंका अगस्तकुण्डा, नैपालियोंका बिन्दुमाधव, ठाकुरोंका भोजूबीर, राजपूतानेके ब्राह्मणोंका रानीभवानीगली, सिन्धियोंका लाला लाजपतराय नगर, महाराष्ट्रियोंका दुर्गाघाट, बालाघाट, मुसलमानोंका मदनपुर, अलईपुर, लल्लापुर और काबुलियोंका नयी सड़क-बेनिया मुहल्ला है। इसके अलावा चीनी, जापानी, सिंहली, फ्रांसिसी, भूटानी, अँग्रेज और अमेरिकन भी यहाँ रहते हैं। सारनाथमें बौद्धोंकी बस्ती है तो रेवड़ी तालाब पर हरिजनों की। व्यवसायके नामपर भी अनेक मुहल्ले आबाद हैं।

: बनारसकी चौपाटी :

काशीको दुनियासे न्यारी कहा जाता है और यह सारा 'न्यारापन', बनारसी चौपाटी-दशाश्वमेध घाटपर खिंच आया है, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

जो बम्बईकी चौपाटीकी चाट खा आये हैं, उन्हें दशाश्वमेधघाटकी चौपाटी कहते जरा झिझक होती है। ऐसे लोगोंको असली बनारसी 'भदाई' के विशेषणसे युक्त करनेमें कभी संकोच नहीं करेगा। किसी बनारसीको, अगर बम्बईमें छोड़ दिया जाय तो वह अपनेको 'पागल' समझनेको विवश हो जायगा कुछ ही दिनोंमें। बम्बईमें पाश्चात्य-चमक भले ही हो, पर भारतीयताकी झलक तो अपने बनारसमें ही मिलती है। खैर।

यह निश्चिन्तमनसे स्वीकारा जा सकता है कि बम्बईकी चौपाटी-दशाश्वमेध घाटमें कोई मुकाबला नहीं। एकमें बाजारू सौन्दर्य है तो दूसरेमें शाश्वत।

मुलाहज़ा फरमाइये—

सुबह होते ही, घाटपर मालिशका बाजार गर्म हो जाता है। बनारसीके लिए स्नानके पूर्व मालिशका वही महत्त्व है, जो आधुनिकोंके लिए स्नो-क्रीम-पाउडरका। एक पैसेकी दक्षिणामें, कपड़ोंकी चौकीदारी, स्नानोपरान्त आइने-कंघीकी व्यवस्थासे लेकर तिलक लगाने तककी सेवा आप यहाँ उपस्थित घाटियेसे ले सकते हैं। ब्राह्मणका आशीर्वाद फोकटमें मिल जायगा।

जरा सामने निगाह उठाइये तो गंगाकी छातीपर धीरे-धीरे उस पारकी ओर सरकती नौकाएँ आपका ध्यान तुरत आकर्षित कर लेंगी। बनारसके

'गुरु' और रईस, शहरमें मल-त्यागना अपराध समझते हैं, सो उसपार निछद्दममें निपटानको जाते हुए बनारसीकी दिव्य छटासे आपकी आत्मा तृप्त हो जायगी। ये निपटान-नौकाएँ, अधिकतर पर्सनल होती हैं और इनका दर्शन शामको भी किया जा सकता है।

स्नानार्थियोंमें कमसे कम ७० परसेंट महिलाएँ होती हैं, इसलिए कुछ बीमार किस्मके 'आँख-सेंकते' भी दिखाई पड़ेंगे। बनारसकी महिलाएँ जरा मर्दानी किस्मकी होती हैं, सो ऐसे बीमारोंकी कतई परवा नहीं करतीं।

अस्सी और वरुणा-संगमके मध्यमें होनेके कारण यहाँसे सम्पूर्ण बनारसकी परिक्रमा आप कर सकते हैं, इसलिए कि काशीका 'रस' यहाँके घाटोंमें ही सन्निहित है।

अब घाटसे ऊपर आइये और देखिये कि बनारस कितना कंगाल है—सड़क पर अपनी गृहस्थी जमाये भिखमंगोंको देखकर स्वाभाविक है कि बनारसके प्रति आपकी आइडिया खराब हो जाय, यह अनभिज्ञता और भ्रमका परिणाम है। काशीके भिखमंगोंकी माली हालत आफिसमें कलम रगड़नेवाले सफेद पोश बाबुओंसे उन्नीस नहीं होती। मरनेके बाद उनके लावारिस गूदड़के अन्दरसे सरकारको अच्छी-खासी आमदनी हो जाती है। भिखमंगोंके बनवाये हुए अनेक भवन-धर्मशालाएँ बनारसमें स्थित हैं। एकबार चितरञ्जन-पार्कके पास एक बूढ़ी भिखमंगिन जब मरी तब उसके गूदड़से सात सौ अट्ठासी रुपये, साढ़े तेरह आनेकी मोटी रकम प्राप्त हुई थी। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि आप उन्हें 'छिपा-रईस' समझ कर उनका जायज हक हड़पकर लें। भीख माँगना उनका पेशा है और पेशेका सम्मान करना आपका धर्म।

शामको इस बनारसी चौपाटीका वास्तविक सौन्दर्य दीख पड़ता है। कराचीकी फैशनपरस्ती, लाहौरकी शोखी, बंगालकी कला प्रियता, मदरासकी शालीनता, गुजरात-महाराष्ट्र सब उमड़ पड़ता है। यद्यपि दशाश्वमेधका

क्षेत्र बहुत ही सीमित है तथापि गागरमें सागरका समाजाना आप खूब अनुभव कर लेंगे।

विश्वनाथ गलीवाली नुक्कड़से सिलसिलेवार स्थित तीन रेस्तरां आपको सर्वाधिक आकर्षित करेंगे। उनके अनुचर मोचीसे लेकर श्रीमान् तकको बिना किसी भेदभावके, भाई साहब, चचा, दादा और बहनजी आदि पुनीत सम्बोधनोंसे निहाल कर देंगे; भलेही आपकी जेबमें एक कप चाय तककी कीमत न हो।

उपर्युक्त तीनों जलपान-घरोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। बनारसके इकन्नियाँ ब्रांडसे लेकर रुपये ब्रांडतकके साहित्यकार, शामको इन्हें अपने आगमनसे पवित्र करना अपना कर्तव्य समझते हैं। थोड़ा प्रयत्न करें तो घाटके किसी अन्धेरे कोनेमें, साहित्यकारोंकी मण्डली किसी गम्भीर साहित्यिक-समस्यामें उलझी हुई मिल जायगी।

यों काशीका ऐसा कोई साहित्यकार आपको नहीं मिलेगा जो दशाश्व-मेधमें न जमता हो। अनेक साहित्यिक-वादोंका प्रसार और उनके आप-रेशनका थियेटर भी दशाश्वमेध ही है। अधिकतर साहित्यिक गोष्ठियाँ भी यहीं आयोजित होती हैं।

घाटपर शामको, धर्मोंकी जो धारा लहरती है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। कथावाचक रामायण, महाभारत, चैतन्य चरितावली, भागवत आदिकी पुनीत कथासे वातावरणको गमका देते हैं।

इस स्थानकी प्रशंसा भारतीयोंने की ही है, दूसरे देशवालोंने भी गुणगान किये हैं। प्रसिद्ध पर्यटक श्री जे० बी० एस० हाल्डेनकी पत्नीने कहा है कि मुझे यह जगह न्यूयार्कसे अच्छी लगती है। एक रूसी पर्यटकने इसे पेरिससे सुन्दर नगरी कहा है। विश्व स्वास्थ्य संघके एक अधिकारीने इसे सारे जहाँसे अच्छा स्थल माना है। मेरे एक मित्र, जो लन्दन गये हुए हैं, उन्होंने जब स्वेज नहरका दृश्य देखा तब उन्हें बनारसके घाटोंके दृश्य याद आ गये।

प्राचीनकालमें दशाश्वमेधका नाम 'रूपसरोवर' था। इसके बगलमें घोड़ा घाट है। पहले इसका नाम गऊघाट था। काशीकी गायें यहाँ पानी पीने आती थीं। गोदावरी-गंगाका संगम स्थल आज घोड़ाघाट बन गया है। त्रेतायुगमें दिवोदासने यहाँ दस अश्वमेध यज्ञ करवाये थे, तभीसे इस स्थानका नाम दशाश्वमेघ घाट हो गया है। आज भी ऊपर दशाश्वमेधेश्वरकी मूर्त्ति है।

शायद ही ऐसी कोई राजनीतिक पार्टी होगी जिसकी सभा इस घाटपर न हुई हो। खासकर सन् ४२ के आन्दोलनके पूर्वके सभी उपद्रव इसी घाटसे प्रारम्भ किये जाते थे। शहरका प्रत्येक जुलूस इसी स्थानसे सजधजकर चलता है। शहरकी सबसे बड़ी सट्टी (तरकारी बाजार) यहीं है और महामना मालवीयने हरिजन-शुद्धिका आन्दोलन इसी घाटसे प्रारंभ किया था।

अब उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्रीकी कृपासे इस घाटका पुनर्निर्माण शुरू हुआ है। निर्माण कार्य समाप्त हो जानेपर यह निश्चित है कि यह स्थान काशीका सर्वाधिक आकर्षक केन्द्रस्थल बन जायगा।

बम्बइया चौपाटीको मात देनेके लिए उत्तर प्रदेशीय-सरकारने भी एक मार्वेलेस-प्लान कार्यान्वित करनेका निश्चय कर लिया है। राजघाट-सारनाथ सड़कके पुलके फाटक बन्द करके बरुणा नदीसे विशाल झील निर्मित होगी। शान्त-वातावरणमें इस झीलमें जल-विहार कितना मनोरम होगा, अनुमान ही मनमें स्फुरण भर देता है।

: बनारसकी सीढ़ियाँ :

शाँड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी।
इनसे बचे तो सेवे काशी॥

पता नहीं, कब किस दिलजलेने इस कहावतको जन्म दिया कि काशीकी यह कहावत अपवादके रूपमें प्रचलित हो गयी। इस कहावतने काशीकी सारी महिमापर पानी फेर दिया है। मुमकिन है कि उस दिलजलेको इन चारोंसे कभी वास्ता पड़ा हो और काफी कटु अनुभव हुआ हो। खैर, चाहे जो हो, पर यह सत्य है कि काशी आनेवालोंका इन चारोंसे परिचय हो ही जाता है। फिर भी आश्चर्यका विषय यह है कि काशीमें आनेवालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है और जो एकबार यहाँ आ बसता है, मरनेके पहले टलनेका नाम नहीं लेता, जबकि पैदा होनेवालोंसे कहीं अधिक श्मशानमें मुर्दे जलाये जाते हैं। यह भी एक रहस्य है।

इन चारोंमें सीढ़ीके अलावा बाकी सभी सजीव प्राणी हैं। बेचारी सीढ़ीको इस कहावतमें क्यों घसीटा गया है, समझमें नहीं आता। यह सत्य है कि बनारसकी सीढ़ियाँ (चाहे वे मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर अथवा घर या घाट किसीकी क्यों न हो) कम खतरनाक नहीं हैं, लेकिन यहाँकी सीढ़ियोंमें दर्शन और अध्यात्मकी भावना छिपी हुई है। ये आपको जीनेका सलीका और जिन्दगीसे मुहब्बत करनेका पैगाम सुनाती हैं। अब सवाल है कि वह कैसे? आँख मूँदकर काम करनेका क्या नतीजा होता है, अगर आपने कभी ऐसी ग़लती की है, तो आप यह स्वयं समझ सकते हैं। सीढ़ियाँ आपको यह बताती रहती हैं कि आप नीचेकी ज़मीन देखकर चलिए, दार्शनिकोंकी तरह आसमान मत देखिये, वर्ना एक अर्सेतक

आसमान में दिखा दूँगी अथवा कजा आयी है जानकर सीधे शिवलोक भिजवा दूँगी।

काशी की सीढ़ियाँ चाहे कहींकी क्यों न हो—न तो एक नापकी हैं और न उनकी बनावटमें कोई समानता है, न उनके पत्थर एक ढंगके हैं, न उनकी ऊँचाई-नीचाई एक सी है, अर्थात् हर सीढ़ी हर ढंगकी है। जैसे हर इन्सानकी शक्ल जुदा-जुदा है, ठीक उसी प्रकार यहाँकी सीढ़ियाँ जुदा-जुदा ढंगसे बनायी गयी हैं। काशीकी सीढ़ियोंकी यही सबसे बड़ी खूबी है। अब आप मान लीजिए सीढ़ीके ऊपर हैं, नीचेतक ग़ौरसे सारी सीढ़ियाँ आपने देख लीं और एक नापसे कदम फेंकते हुए चल पड़े, पर तीसरीपर जहाँ अनुमानसे आपका पैर पड़ना चाहिए नहीं पड़ा, बल्कि चौथीपर पड़ गया। आगे आप जरा सावधानीके साथ चलने लगे तो आठवीं सीढ़ी अन्दाजसे कहीं अधिक नीची है, ऐसा अनुभव हुआ। अगर उस झटकेसे अपनेको बचा सके तो गनीमत है, वर्ना कुछ दिनोंके लिए अस्पतालमें दाखिल होना पड़ेगा। अब आप और भी सावधानीसे आगे बढ़े तो बीसवीं सीढ़ीपर आपका पैर न गिरकर सतहपर ही पड़ जाता है और आपका अन्दाजा चूक जाता है। ग़ौरसे देखनेपर आपने देखा यह सीढ़ी नहीं, चौड़ा फ़र्श है।

खतरनाक सीढ़ियाँ क्यों

अब सवाल यह है कि आखिर बनारसवालोंने अपने मकानमें, मन्दिर में, या अन्य जगह ऐसी खतरनाक सीढ़ियाँ क्यों बनवायीं ? इसमें क्या तुक है ? तो इसके लिए आपको ज़रा काशीका इतिहास उलटना पड़ेगा। बनारस जो पहले सारनाथके पास था, खिसकते-खिसकते आज यहाँ आ गया है। यह कैसे खिसककर आ गया, यहाँ इसपर ग़ौर करना नहीं है। लेकिन बनारसवालोंमें एक खास आदत है, वह यह कि वे अधिक फैलावमें बसना नहीं चाहते, फिर गंगा, विश्वनाथ मन्दिर और बाजारके निकट

रहना चाहते हैं। जब जी चाहा दनसे गंगामें गोता मारा और ऊपर घर चले आये। बाजारसे सामान खरीदा, विश्वनाथ दर्शन किया, चट घरके भीतर। फलस्वरूप गंगाके किनारे-किनारे घनी आबादी बसती गयी। जगह संकुचित, पर धूप खाने तथा गंगाकी बहार लेने और पड़ोसियोंकी बराबरी में तीन-चार मंजिल मकान बनाना भी ज़रूरी है। अगर सारी ज़मीन सीढ़ियाँ ही खा जायँगी तो मकानमें रहनेको जगह कहाँ रहेगी? फलस्वरूप ऊँची-नीची जैसी पत्थरकी पटिया मिली, फिट कर दी गयी--लीजिये भैयाजीकी हवेली तैयार हो गयी। चूँकि बनारसी सीढ़ियोंपर चढ़ने-उतरनेके आदी हो गये हैं, इसलिए उनके लिए ये खतरनाक नहीं हैं, पर मेहमानों तथा बाहरी अतिथियोंके लिए यह अवश्य है।

काशीके घाट

विश्वकी आश्चर्यजनक वस्तुओंमें बनारसके घाटोंको क्यों नहीं शामिल किया गया—पता नहीं, जब कि दो मील लम्बे पंक्तिवार घाट विश्वमें किसी नदी तटपर कहीं भी नहीं हैं। ये घाट केवल बाढ़से बनारसकी रक्षा नहीं करते, बल्कि काशीके प्रमुख आकर्षण केन्द्र हैं। जैन ग्रन्थोंके अध्ययनसे पता चलता है कि प्राचीनकालमें काशीके घाटोंके किनारे-किनारे चौड़ी सड़कें थीं, यहाँ बाजार लगते थे। वर्त्तमान घाटोंकी निर्माण-कला देखकर आज भी विदेशी इंजीनियर यह कहते हैं कि साधारण बुद्धिसे इसे नहीं बनाया गया है। रामनगर, शिवाला, दशाश्वमेध, पंचगंगा और राजघाटका निर्माण पानीके तोड़को दृष्टिमें रखते हुए किया गया है ताकि रामनगर तटसे धक्का खाकर शिवालामें नदीका पानी टकराये, फिर वहाँसे दशाश्वमेधसे मोर्चा ले, पंचगंगा और अन्तमें राजघाटसे टक्कर ले और फिर सीधी राह जाय। अगर आपने इस कौशलकी ओर गौर नहीं किया तो कभी करके देख लें। इस कौशलपूर्ण निर्माणका एकमात्र श्रेय राजा बलवन्त सिंहको है, जिन्होंने अपने समकालीन राजाओंकी सहायतासे

बनारसको बाढ़ोंसे मुक्ति दिला दी है, अन्यथा अन्य शहरोंकी तरह बनारस-को भी बाढ़ बहा ले जाती।

घाटोंकी सीढ़ियोंकी उपयोगिता

सीढ़ियोंका दृश्य काशीके घाटोंमें ही देखनेको मिलता है। चूंकि काशी नगरी गंगाकी सतहसे काफी ऊँचे धरातलपर बसी है इसलिए यहाँ सीढ़ियोंकी बस्ती है। काशीके घाटोंको आपने देखा होगा, उनपर टहले भी होंगे। लेकिन क्या आप बता सकते हैं कि केदारघाटपर कितनी सीढ़ियाँ हैं? सिंधिया घाटपर कितनी सीढ़ियाँ हैं? शिवालेसे त्रिलोचनतक कितनी बुर्जियाँ हैं? साफा लगाने लायक कौन-सा घाट अच्छा है? आप कहेंगे कि यह बेकारका सरदर्द कौन मोल ले। लेकिन जनाब, हरिभजनसे लेकर बीड़ी बनानेवालोंकी आम सभाएँ इन्हीं घाटोंपर होती हैं। हजारों गुरु लोग इन घाटोंपर साफा लगाते हैं, यहाँ कविसम्मेलन होते हैं, गोष्ठियाँ होती हैं, धर्मप्राण व्यक्ति सर्राटेसे माला फेरते हैं, पण्डे धोतीकी रखवाली करते हैं, तीर्थयात्री अपने चंदवे साफ करवाते हैं। यहाँ भिख-मंगोंकी दुनिया आबाद रहती है और सबसे मजेदार बात यह है कि घरके उन निकलुओंको भी ये घाट अपने यहाँ शरण देते हैं जिनके दरवाजे आधी रातको नहीं खुलते। ये घाटकी सीढ़ियाँ बनारसका विश्रामगृह हैं, जहाँ सोनेपर पुलिस चालान नहीं करेगी, नगरपालिका टैक्स नहीं लेगी और न कोई आपको छेड़ेगा। ऐसी हैं बनारसकी ये सीढ़ियाँ।

: बनारसकी सुबह :

बनारसकी सुबह, इलाहाबादकी दोपहर, लखनऊकी शाम और बुन्देलखण्डकी रात सारे भारतमें प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि आत्महत्या के लिए उद्यत व्यक्तिको यदि सुबह बनारसमें, दोपहरको इलाहाबादमें, शामको लखनऊमें और रातको बुन्देलखण्डमें घुमाया जाय तो उसे अपने जीवनके प्रति अवश्य मोह उत्पन्न हो जायगा और शायद उसमें कवित्वकी भावना भी जाग्रत हो जाय। उत्तर प्रदेशके साहित्यिक गढ़ इसके प्रमाण हैं।

यदि आपने बनारसकी सुबह नहीं देखी है तो कुछ नहीं देखा। बनारसका असली रूप यहाँ सुबहको ही देखनेको मिलता है। अब सवाल यह है कि बनारसमें सुबह होती कब है? अंग्रेजी सिद्धान्तके अनुसार या हिन्दू ज्योतिषके अनुसार, इसका निर्णय करना कठिन है। लगे हाथ उसका उदाहरण भी ले लीजिए। अपने राम पैदाइशी ही नहीं, खानदानी बनारसी हैं, इस शहरकी गलियोंमें नंगे होकर टहले हैं, छतोंपर कनकौवे उड़ाये हैं, पान घुलाया है, भाँग छानी है और गहरेबाजी भी की है। लेकिन आजतक हम खुद ही नहीं जान पाये कि बनारसकी सुबह होती कब है?

दो-तीन वर्ष पहले की बात है, काशीके कुछ साहित्यिकोंके साथ कवि सम्मेलनसे लौट रहे थे। जाड़े की अँधियारी रात। बारह बज चुके थे। घाट किनारे नाव लगी। हमने आश्चर्यके साथ देखा—एक आदमी दातौन कर रहा था। जब यह पूछा गया कि इस समय दातौन करनेका क्या तुक है, तब उसने एकबार आसमान की ओर देखा और फिर

कहा—'सुकवा उगल बाय, अब भिनसारमें कितना देर बाय।' अर्थात् शुक्र ताराका उदय हो गया है, अब सबेरा होनेमें देर ही कितनी है? इतना कहकर उसने कुल्ला किया और बम महादेव की आवाज लगाता हुआ डुबकी मार गया। यह दृश्य देखकर कोट-चादरके भीतर हमारे बदन काँप उठे।

सुबहके चार बजेसे सारे शहरके मन्दिरोंके देवता अँगड़ाई लेते हुए स्नान और जलपानकी तैयारीमें जुट जाते हैं। मन्दिरोंमें बजनेवाले घड़ियालों और घंटोंकी आवाज़से सारा शहर गूँज उठता है। सड़कके फुटपाथोंपर, दुकानकी पटरियोंपर सोयी हुई जीवित लाशें कुनमुना उठती हैं। फिर धीरे-धीरे बीमार तथा बूढ़े व्यक्ति—जिन्हें डाक्टरोंकी खास हिदायत है कि सुबह जरा टहला करें—सड़कोंपर दिखायी देने लगते हैं। मकानोंके वातायनसे छात्रोंके अस्पष्ट स्वर, गंगा जानेवाले स्नानार्थियोंकी भीड़ और गहरेबाज इक्कों और रिक्शोंके कोलाहलमें सारा शहर खो जाता है।

कञ्चनजंघाकी सूर्योदयकी छटा अगर आपने न देखी हो अथवा देखनेकी इच्छा हो तो आप बनारस अवश्य चले आइये। यह दृश्य आप काशीके घाटोंके किनारे देख सकते हैं। मेढककी छतरियों जैसी घुटी हुई अनेक खोपड़ियाँ, जिन्हें देखकर चपतबाजी खेलनेके लिए हाथ खुजलाने लगता है, नाइयोंके पास लेटे हुए मालिश कराते हुए जवान पट्ठे, आठ-आठ घंटे स्पीडके साथ माला फेरते हुए भक्त, ध्यानमें मग्न नाक दबाये भक्तिनें, कमण्डलमें अक्षत-फूल लिए संन्यासियों तथा स्नानार्थियोंका समूह, अशुद्ध और अस्पष्ट मंत्रोंका पाठ करते दक्षिणा सँभालती हुई पंडोंकी जमात, साफा लगानेवाले नवयुवकोंकी भीड़ और बाबा भोलानाथकी शुभ कामनाओंका टेलीग्राफ पहुँचानेवाले भिखमंगोंकी भीड़ सब कुछ आपको काशीके घाटोंके किनारे सुबह देखनेको मिलेगा।

मीरज़ा ग़ालिबकी वकालत

अगर आपको मेरी बात यक़ीन न हो तो नजमुद्दौला, दबीरुल्मुल्क, निज़ाम जंग मीरज़ा असदुल्ला बेग खां उर्फ़ मीरज़ा ग़ालिबका बयान ले लीजिये :—

त आलल्ला बनारस चश्मे बद दूर
बहिश्ते खुर्रमो फ़िरदौसे मामूर
इबादत ख़ानए नाक़ूसियाँ अस्त
हमाना काबए हिन्दोस्तां अस्त

[हे परमात्मा, बनारसको बुरी दृष्टिसे दूर रखना क्योंकि यह आनन्द-मय स्वर्ग है। यह घण्टा बजानेवालों अर्थात् हिन्दुओंकी पूजाका स्थान है यानी यही हिन्दुस्तानका काबा है।

बुतानशरा हयूला शोलए तूर
सरापा नूर, ऐज़द चश्म बद दूर
मियां हा नाज़ुको दिल हा तुवाना
ज़े नादानी बकारे ख़्वेश दाना
तबस्सुम बस कि दर दिल हा तिर्बा ईस्त
दहन हा रश्के गुल हाए रबी ईस्त
ज़े अंगेज़े क़द अन्दाज़े ख़रामे
ब पाये गुल बुने गुस्तरदः दामे

[यहाँके बुतों अर्थात् मूर्तियों और बुतों अर्थात् सुन्दरियोंकी आत्मा तूरके पर्वतकी ज्योतिके समान है। वह सिरसे पाँवतक ईश्वरका प्रकाश है। इनपर कुदृष्टि न पड़े। इनकी कमर तो कोमल है, किन्तु हृदय बलवान् है। यों इनमें सरलता है, किन्तु अपने काममें बहुत चतुर हैं। इनकी मुस्कान ऐसी है कि हृदयपर जादूका काम करती है। इनके मुखड़े इतने सुन्दर हैं कि रबी अर्थात् चैतके गुलाबको भी लजाते हैं। इनके

शरीरकी गति तथा आकर्षक कोमल चालसे ऐसा जान पड़ता है कि गुलाबके समान पाँवके फूलोंका जाल बिछा देती हैं।]

ज़ ताबे जलवये ख़्वेश आतिश अफ़रोज़
बयाने बुतपरस्तो बरहमन सोज़
ब लुत्फ़े मौजे गौहर नर्म रू तर
ब नाज़ अज़ ख़ूने आशिक गर्म रू तर

[अपनी ज्योतिसे, जो अग्निके समान प्रज्वलित है, यह बुतपरस्त तथा बरहमनकी बोलनेकी शक्ति भस्म कर देती है अर्थात् यह इनका सौन्दर्य देखकर मूक हो जाते हैं। पानीमें उनका विलास मोतीकी लहरोंसे भी नर्म और कोमल जान पड़ता है। पानीमें स्नान करनेवाली जो अठखेलियाँ करती हैं, उनसे जो पानीके छींट उठते हैं, उनकी ओर कविका संकेत है। उनका नाज़ अर्थात् हास-विलास आशिक़के ख़ूनसे भी गर्म है।]

ब सामाने गुलिस्तां बर लबे गंग
ज़ ताबे रुख़ चिरागां बर लबे गंग
रसादः अज़ अदाए शुस्त व शूए
ब हर मौजे नवेदे आबरूए
क़यामत क़ामतां, मिज़गां दराज़ां
ज़ मिज़गां बर सफ़े-दिल तीरः बाज़ां
ब मस्ती मौज रा फ़रमूदः आराम
ज़ नग़ज़े आब रा बख़्शिन्दा अन्दाम

[गंगा किनारे यह क्या आ गयीं एक उद्यान आ गया है। इनके मुखके प्रकाशसे गंगाके किनारे दीपावलीका दृश्य हो गया है। उनके नहाने-धोनेकी अदासे प्रत्येक मौजको आबरूका आमंत्रण मिलता है। इन सुन्दर डील-डौलवाली तथा बड़ी-बड़ी पलकोंवाली सुन्दरियोंसे क़यामत आती है। यह दिलकी पंक्तिपर अपनी बड़ी बरौनियोंसे तीर चलाती हैं।

अपनी मस्तीसे इन्होंने गंगाकी लहरोंको शान्त कर दिया है। अपनी सुन्दरतासे इन्होंने पानीको स्थिर कर दिया है।]

फ़तादः शोरिशे दर क़ालिबे आब
ज़ माहीं सद दिलश दर सीना बेताब
ज़ ताबे जलवा हा बेताब गश्तः
गोहर हा दर सदफ़ हा आब गश्तः
ज़ बस अर्ज़ तमन्ना मी कुनद गंग
ज़ मौजे आबहा वा मी कुनद गंग

[पुनः पानीके शरीरके अन्दर इन्होंने हलचल उत्पन्न कर दी और सीनेमें सैकड़ों दिल मछलीके समान छटपटाने लगे। अपने सौन्दर्यकी ऊष्णतासे विकल होकर वह पानीमें चली गयीं और ऐसा जान पड़ता है जैसे सीपमें मोती हो। गंगा भी अपने हृदयकी अभिलाषा प्रकट करती हैं और अपनी पानीकी लहरोंको खोल देती हैं कि आओ इसमें स्नान करो।]

बनारसकी सुबहकी तारीफ़में मीरज़ा ग़ालिबका यह कलाम पेश करनेके बाद यह ज़रूरी नहीं कि ऐरां-गैरोंकी भी गवाही पेश करूँ। गोकि एक शायरने यह तकरीर पेश की है कि सुबहके वक्त आसमानके सारे बादल बनारसकी गंगामें डुबकी लगाकर पानी पीते हैं और फिर उसे सारे हिन्दुस्तानमें ले जाकर बरसा देते हैं। उस शायरका नाम याद नहीं आ रहा है, इसके लिए मुझे दुःख है।

बनारसी निपटान

सुबहके समय पहले लोग प्रातः क्रियासे निवृत्त होते हैं, इस क्रियाको बनारसी शब्दमें 'निपटान' कहते हैं। बनारस नगरपालिकाकी कृपासे अभी तक भारतकी सांस्कृतिक राजधानी और अनादिकालकी बनी नगरीमें सभी जगह 'सीवर' नहीं गया है। भीतरी महालमें जानेपर भी वहाँ गर्मी

की दोपहरको लाइटकी ज़रूरत महसूस होती है। फलस्वरूप अधिकांश लोगोंको बाहर जाकर निपटना पड़ता है। निपटान एक ऐसी क्रिया है जिसे बनारसी अपने दैनिक जीवनका सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य समझता है। बनारससे बाहर जानेपर उसे इसकी शिकायत बनी रहती है। एकबार काशीके एक प्रकाण्ड पंडित सक्खर गये। वहाँसे लौटनेपर सक्खर-यात्रा पर लेख लिखते हुए लिखा—'हवाई जहाजपर निपटानका दिव्य प्रबन्ध था।' कहनेका मतलब यह कि हर बनारसी निपटानका काफ़ी शौक रखता है।

बनारसमें एक ओर जहाँ मन्दिरोंकी घंटियोंकी आवाजें गूँजा करती हैं, वहीं सूर्योदयके पहलेसे ही बनारसकी हर गली और सड़क पर 'लेऽल पोतनी मट्टी, गोपीगंजका बण्डा, रामनगरी भण्टा, जौनपुरी पियाज, पहाड़ी आलू, माघी मिर्चा, कन्धारी अनार, काबुली सेब और बम्बइया केला' की आवाज़ें गूँजा करती हैं। यहाँ भारतकी प्रसिद्ध तरकारियाँ बिकती हैं, मेवे बिकते हैं, भले ही उनकी उपज बनारसके आस-पास तक न हो।

: तीन लोकसे न्यारी :

बनारसमें जो एकबार आया वह यहींका हो गया। बनारसकी मिट्टीमें वह तासीर है कि जो यहाँ आकर बसा, वह 'रामनाम सत्य है' के 'मंत्रोच्चार' में ही टलनेकी सोचेगा। यह सिफ्त यहाँकी आबोहवामें है और मस्त भरी ज़िन्दगीमें है। शायद इसीलिए शेख अली हजीं फरमा गये हैं—

'अज़ बनारस न रवम मअबदे आम अस्तईज।
हर बरहमन पेसरे लछमनो राम अस्तईज॥
परी रूख़ाने बनारस ब सद करिश्मो रंग।
पय परास्तिशे महादेव चूँ कुनन्द आरंग॥
ब गंग गुस्ल कुनंद व बसंग या मालंद।
ज़हे शराफते संग व ज़हे लताफ़ते गंग॥'

अर्थात्—'मैं बनारससे नहीं जाऊँगा, क्योंकि यह सबकी उपासनाका स्थान है। यहाँका प्रत्येक ब्राह्मण राम और लक्ष्मण है। यहाँ परियों जैसी सुन्दरियाँ सैकड़ों हाव-भावके साथ महादेव जी की पूजाके लिए निकलती हैं। वे गंगामें स्नान करती हैं और पत्थरपर अपने पैर घिसती हैं। क्या ही उस पत्थरकी सज्जनता है और क्या ही गंगा जी की पवित्रता।'

आज भी किसी बनारसीसे आप यह सवाल पूछें कि आखिर बनारसमें ऐसी कौन सी सिफ्त है जिससे तुम्हें इतनी मुहब्बत है तो वह यही कहेगा कि हिन्दुस्तानमें तमाम बातें मिल सकती है, पर बनारस जैसी अलमस्ती और बनारसियों जैसा अपनत्व नहीं मिलेगा, फिर 'बहरी अलंग' की बहारके लिए तो देवताओं तककी जिह्वासे तरलता छूटती है।—जी, जनाब, ऐसा है, अपना बनारस!

बहरी अलंग क्या है ?

बहरी अलँग वह 'स्वर्ग' है जहाँ जानेपर वह भावनाएँ उत्पन्न होती हैं जो हिलारीके मनमें एवरेस्टपर पैर रखते वक्त उत्पन्न हुई थीं। इसका यह अर्थ नहीं कि बनारसी लोग वैराग्यकी साधनाके लिए वहाँ जाते हैं, नहीं, वे तो पूरी पलटन रेजगारियों (बच्चों) के साथ जीवनका आनन्द लेनेके लिए जाते हैं।

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

इस सिद्धान्तका पालन प्रत्येक बनारसी करता है। भले ही घरमें चूहे डण्ड पेलते हों, पर बहरी अलंग जानेका निश्चय खंडित नहीं हो सकता। हड़ताल हो या मार्शल-ला, राजा मरे या रानी, अगर उस दिन किसी कारण-वश दफ्तर या दूकान बन्द है तो बैठे ठाले वह सीधे बहरी अलंग जानेका प्रोग्राम बनायेगा। जिस प्रकार रोजगारियोंको सफ़र करते समय भी घाटा-मुनाफ़ा जोड़नेकी झक सवार रहती है, नेताओंको हर बातमें राजनीति घुसेड़नेकी सनक सवार रहती है, ठीक उसी प्रकार हर खांटी बनारसीको बहरी अलंग जानेकी धुन सवार रहती है। सच पूछिये तो बहरी अलंग न तो कोई तीर्थस्थल है और न म्यूज़ियम, वहाँ न तो कोई सरकारी अतिथिशाला है और न दर्शनीय स्थल। वह है, केवल बनारसियोंके मौज-पानी लेनेका दिव्य स्थल। यहाँ गुरु लोग जरा स्वच्छन्द होकर विचरण करते हैं।

बहरी अलंग उन्हीं क्षेत्रोंको कहा जाता है जहाँ पक्का तालाब हो और उस तालाबमें चौरस पत्थरके घाट हों, जिसपर प्रेमसे साफा लगाया जा सके। अगर तालाब नहीं है तो फर्स्ट क्लासका कुआँ हो, आस पास घने वृक्ष हों। निपटने लायक लम्बा-चौड़ा मैदान हो जो अत्यन्त स्वच्छ हो, वर्ना भाई लोगोंकी ठीक वैसी ही मुद्रा हो जाती है जैसी अफीमचीकी इमली देखकर हो जाती है।

बनारसी निपटनेके अत्यन्त प्रेमी होते हैं। भोजन चाहे जैसा मिले, सोनेकी जगह कण्डम हो, पर निपटनेका स्थान दिव्य होना चाहिए। साफा लगाने लायक चौरस भूमि चाहिए। अगर उसे इन दोनों स्थानोंकी कमी अखरी तो वह बराबर असन्तुष्ट रहेगा। भले ही उसे मीलोंका चक्कर लगाना पड़े, पर उसे दिव्य स्थान चाहिए। यही वजह है कि बनारसी लोग जब बनारसके बाहर जाते हैं तब निपटने-नहानेके दिव्य स्थान ही तजवीजते हैं।

मुख्य कार्य-क्रम

सारनाथ, रामनगरके अलावा और जितने बहरी अलंगके क्षेत्र हैं, वहाँ पलटन लेकर लोग नहीं जाते। वहाँ केवल नेमी लोग जाते हैं। कुछ लोग गहरेबाजपर जाते हैं और कुछ दौड़ लगाकर। जिस प्रकार किसी-किसी संस्थाके सदस्य एक खास किस्मकी पोशाक पहनते हैं, ठीक उसी प्रकार बहरी अलंगके प्रेमी भी सेनगुप्ताकी धोती, गावटीका गमछा, लंगोट या बिश्टी और वृन्दावनी दुपट्टेका प्रयोग करते हैं। धोती-दुपट्टा न रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर गमछा और लंगोटका रहना जरूरी है। आवश्यक सामानोंमें लोटा, बाल्टी, डोरी, लोढ़ा (सिल वहाँ मिल ही जाती है,) साबुनकी बट्टी, तेलकी शीशी और विजयाका पैकेट प्रत्येक प्रेमी अपने साथ रखता है।

बहरी अलंग पहुँचते ही लंगोटके अतिरिक्त नंग-धड़ंग होकर पहले भाँगको खूब साफकर बूटी तैयार कर ली जाती है। बूटी छाननेके पश्चात् नटई तक (आकण्ठ) पानी पीकर हंड़िया या बाल्टी लेकर लोग निपटने जाते हैं। उनके निपटनेकी क्रिया अध्ययन करने योग्य है। घण्टा-आधा घण्टा निपटना साधारण बात है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो कई घण्टे तक निपटते ही रह जाते हैं।

निपट चुकनेके बाद एक दूसरेकी मालिश तबतक करते रहेंगे जबतक बदनका टेम्परेचर १०० डिग्रीसे ऊपर न पहुँच जाय। इसके बाद स्नान करते हैं और तब हजार-पन्द्रह सौ डण्ड-बैठक करते हैं। अगर गदा, जोड़ी खाली मिली तो उसपर भी रियाज कर लेना अच्छा समझते हैं। अगर ये साधन खाली न मिले तो तबतक 'बाँह' करते रह जायेंगे जब तक वह खाली न हो जाँय।

जिस प्रकार हम एक ही प्रकारका भोजन नित्य खाते-खाते ऊब जाते हैं तब एक दिन सरस भोजन खानेकी इच्छा होती है, ठीक उसी प्रकार वर्षमें दो बार निश्चित रूपसे हर बनारसी अपने परिवारको लेकर सारनाथ और रामनगर अवश्य जाता है। इन दोनों स्थानोंके मेले देखने योग्य होते हैं। परिवारके साथ रहने पर भी गुरुओंके कार्यक्रममें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। उसी तरहसे भांग छानते हैं, साफा लगाते हैं और नहाते-निपटते हैं। यहाँ सब कामसे खाली होनेपर बाटी, चुरमा, दाल, भात और फर्स्ट क्लासकी तरकारी खाते हैं। भोजनका यह मजा दिल्लीके अशोक होटलमें और बम्बईके ताजमहलमें भी दुर्लभ है।

दंगलके प्रेमी

बहरी अलंगका ही ऐसा प्रभाव है कि बनारसमें आये दिन दंगलकी प्रतियोगिता होती है। नागपंचमीका पर्व भारतमें चाहे जिस ढंगसे मनाया जाता हो, पर यहाँ छोटे गुरु बड़े गुरुके रूपमें पूजा करते हुए सम्पूर्ण बनारसमें दंगल प्रतियोगिता की जाती है।

बनारसमें आज दंगलकी प्रतियोगिता केवल पट्ठोंके बीच ही नहीं, जानवरोंमें भी व्याप्त है। आये दिन सड़कोंपर साँड़ गरजते हुए लड़ते हैं। भैंस, मेढ़ा और पक्षियोंका अनोखा दंगल प्रत्येक वर्ष जाड़ेमें अवश्य होता है। बुलबुल, तीतर और बटेरका भी युद्ध होता है। मकर-संक्रान्तिका पर्व पक्षियोंके दंगलका खास दिन है। लोग अपने-अपने पक्षियोंका दंगल उस दिन अवश्य कराते हैं। यह दंगल केवल दंगलके लिए नहीं, बाजी

लगाकर किये जाते हैं। बनारस ही एक ऐसा नगर है जहाँ इस प्रकारका आयोजन होता है। कजली-बिरहा और चनाजोर वालोंका शायरीका दंगल भी बरसातके दिनोंमें देखनेमें आता है। कबड्डी और तैराकीका दंगल गर्मीके मौसममें होता है। फैन्सी ड्रेसका दंगल तो यहाँ प्रत्येक मेलेमें देखा जा सकता है।

बहरी अलंगका वास्तविक अर्थ विश्वकोषमें क्या है, पता नहीं। लेकिन बहरी अलंगकी मिट्टीमें वह बहार है जो बम्बईकी चौपाटीमें नहीं, धर्मतल्लाकी ब्यूटीमें नहीं और न कनाट सरकसकी नफासतमें है! बनारसियोंको अपने इस क्षेत्रपर जितना गर्व है, उतना अपने नगरके प्रति नहीं है। बनारस और बनारसियोंका असली रूप देखना हो तो बहरी अलंग अवश्य देखिये। बिना बहरी अलंग देखे आप यह कभी नहीं जान पाइयेगा कि बनारसियोंको अपने बनारससे इतनी मुहब्बत क्यों है? बहरी अलंग केवल दिलबहलावका क्षेत्र नहीं, बल्कि अध्यात्म और साधनाका क्षेत्र भी है।

बनारसके बड़े-बूढ़ोंको जब रंग जमाना होता है तब वे बहरी अलंगके कितने प्रेमी थे, इसका उदाहरण पेश करते हुए कहते हैं—'जेतना हंडिया निपटके फेंक देहले होब, ओतना तोहार बापो न देखले होइयन।' बहरी अलंगमें जब लोग निपटने जाते हैं तब आबदस्तके लिए मिट्टीकी हंड़ियामें पानी ले जाते हैं।

तीन लोकसे न्यारेपनका सार्टिफिकेट दिलानेमें, 'बहरी अलंग' का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। मर्त्यलोकको मारिये गोली, स्वर्ग तकमें बनारसके 'बहरी अलंग' की मिसाल नहीं। हमारी सरकार, आधुनिकता और प्लानोंके जोशमें, बहुत-से ऐसे स्थानोंको 'भीतरी' यानी शहरी रंग दे रही है—बनारसियोंके समक्ष निस्सन्देह एक कठिन समस्या है यह!

बनारसी के लिए 'बहरी-अलंग' का सर्वोपरि महत्व है।

: बनारसी :

इलाहाबादी, मुरादाबादी और बनारसी आदि शब्दोंके आगे-पीछे यदि अमरूद, लोटा, लँगड़ा आम जैसे शब्द न जोड़े जायँ तो इसका अर्थ होगा—इन शहरोंके निवासी। उत्तरप्रदेश एक ऐसा राज्य है जहाँके शहरोंके नामके पीछे 'ई' लगा देनेसे अर्थ वहाँ के निवासीसे हो जाता है। जैसे बनारसी, मलीहाबादी, आजमगढ़ी, सहारनपुरी, गोरखपुरी, रामपुरी, इलाहाबादी, मीरजापुरी और फरूखाबादी आदि। किसी शहरमें बस जानेका यह मतलब नहीं कि उस व्यक्तिको उस शहरका निवासी मान लिया जाय। अकसर आपने लोगोंको कहते सुना होगा—'भाई, गाँव जाना है।' 'देशमें बहिनकी शादी है।' 'घरपर हालत ठीक नहीं है, रुपये भेजने हैं।' आदि। इससे यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति मौजूदा समय जहाँ है, उसे अपना शहर नहीं मानता और न वहाँका रजिस्टर्ड बाशिन्दा हो गया है—इसे स्वीकार करता है, रोजी-रोजगारके लिए टिका हुआ है। भले ही वह बाहर जाकर अपनेको उस शहरका निवासी घोषित करे, लेकिन मन, वचन और कर्मसे वह उस शहरका निवासी नहीं है। ठीक इसी प्रकार बनारसमें रहनेवाले सभी बनारसी नहीं है।

बनारसी कौन ?

आखिर असली बनारसी है कौन ? उनकी पहचान क्या है ? पहले आपको यह जान लेना चाहिए कि बनारसी कहना किसे चाहिए। बनारसमें पैदा होने या पैदा होकर मर जानेसे बनारसी कहलानेका हक़ हासिल नहीं होता। इस प्रकारके अनेक बनारसी नित्य पैदा होते हैं और मरते हैं। क्या वे सभी बनारसी हैं ? कभी नहीं। बनारसमें पैदा होना, बनारसमें

आकर बस जाना या बनारसी बोली सीख लेना भी बनारसी होनेका पक्का सबूत नहीं है। हिन्दुस्तानको इस बातका फख़ है कि उसके कुछ शहर ऐसे हैं (और उनमें बनारसका महत्त्व सर्वोपरि है) जहाँके निवासियोंकी अदा अपनी है। दूसरोंका उसमे मिल सकना उतना ही कठिन है जितना तेलका पानीमें मिलना। आप कुछ ही दिनके अभ्याससे लन्दनवी, न्यूयार्की, बम्बइया या कलकतिया भले ही बन जायँ, परन्तु बनारसी बन सकना कठिन होगा। प्रसंगवश एक घटना याद आ गयी। हिन्दीके एक (अपनेको धाकड़ कहनेवाले) लेखक कुछ ही महीनेके लिए कलकत्तेसे आकर बनारसमें टिक गये। उन्होंने आव देखा न ताव, चटपट एक कहानी बनारसकी 'रियल' अलमस्तीको आधार बनाकर लिख डाली। परिणाम वही निकला जो सूरजपर थूकनेसे निकलता है। ऐसे ही 'डालडा ब्रांड' बनारसियोंका वर्ग आज समूचे भारतमें बनारसको बदनाम कर रहा है। बनारसके बाहर बनारसीको इतना खतरनाक समझा जाता है कि कोई भी शरीफ़ आदमी उसे अपने यहाँ नौकर नहीं रखना चाहता। लेकिन इस अपवादको स्वीकार करनेके पहले इस बातको दिमाग़में फिट कर लीजिये कि असली बनारसी बनारसके बाहर जाकर रहना पसन्द नहीं करता। यदि उसे काफ़ी इज्ज़तदार नौकरी मिले तो शायद चला भी जाय, लेकिन उसका मन बनारसमें ही अटका रहेगा।

बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली और पटना आदि नगरोंमें रहते हुए जो लोग अपनेको बनारसी कहते हैं, उनसे अगर कभी यह पूछें कि आप बनारसके किस मुहल्लेमें रहते हैं तो कहेंगे—'मेरा घर देहातमें है।' फिर ऐसे गांवका नाम बतायेंगे जिसका नाम आपने कभी न सुना होगा। लगभग सारे भारतमें एक बड़ा वर्ग पानवालोंका है जो 'बनारसी पानवाला' का साईनबोर्ड लगाकर कमा-खा रहे हैं। गोया बनारससे जो बाहर जाते हैं, सभी पनवाड़ी होते हैं अथवा बनारसमें पनवाड़ियोंका कोई विश्वविद्यालय है जहाँ पनवाड़ीकी डिग्री दी जाती है, जिसे लेकर लोग बनारसका नाम

रौशन करनेके लिए बैठ गये हैं। झूठ तो नहीं कहना चाहता, पर लगभग सारे देशमें 'टहरान' दे चुकनेके बाद मुझे यह अनुभव हो गया कि बनारसके अलावा अन्य शहरोंमें जितने बनारसी पानवाले हैं, उनमें अधिकतर 'नान-रियल' हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो—'बनारसमें कवने महल्लामें घर हवऽ—केतना दिनसे इहाँ हउवऽ ?' पूछें तो स्वयं ही स्पष्ट हो जायगा। जब दो बंगाली, मद्रासी या गुजराती आपसमें मिलते हैं तब अपनी भाषामें ही बातचीत करते हैं। उसी प्रकार परदेशमें जब अपने शहरका निवासी मिल जाता है तब बड़ी प्रसन्नता होती है। लेकिन हजरत बनारसी भाषाकी सड़कपर अड़ियल टट्टू ही सिद्ध होते हैं। फिर, 'अपना घर देहातमें है' बतायेंगे ताकि आगे आप और सवाल न पूछ सकें। अगर वह अपनेको इसपर भी बनारसी कहे तो उसके पान लगानेके ढंगसे आप अच्छी तरह समझ जायँगे कि ये हज़रत बनारसके उस गाँवके निवासी भी नहीं हैं। महज़ अपनी साख जमानेके लिए 'बनारसी पानवाला' बने हुए हैं।

मर्त्य लोक ही नहीं, त्रैलोक्यको पान (ताम्बूल) के मैदानमें बनारस आसानीसे चित्त कर सकता है। बनारसी पानका वही महत्त्व समझना चाहिये, जो समुद्र-मंथनके सार अमृतका है। खाँटी बनारसीका भोजन भले ही रोक लें, परन्तु पानका वियोग वह सह नहीं पायगा। बनारसमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं, जिनके 'पानका खर्च' किसी भी परिवारके 'घर-खर्च'से उन्नीस ठहरता हो। बनारसी पानके सुखपर दूसरे शहरोंमें पैसा बटोरकर तारकोल लगानेवालोंके लिए अगर वाजिब सज़ाका अधिकार बनारसीको मिल जाय तो वह क्या तजवीज़ेगा, इसे कोई बनारसी ही सोच सकता है।

दिल्लीके चाटवाले, आगरेके लच्छेवाले, मथुराके पेड़ेवाले जिस प्रकार हर शहरमें पाये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार लखनऊ, बरेली और आगरामें कुछ खोमचेवाले अपनेको बनारसी खोमचावाला कहते हैं। वे

गुड़की पट्टी, सोहन पपड़ी और तिलके लड्डू बेचते हैं। ऐसी थर्डग्रेडी वस्तुओंका कोई खास महत्त्व बनारसमें नहीं, परन्तु बनारसके नामपर दूसरे शहरोंमें कमाईका अच्छा साधन तो है ही।

तीसरा ग्रूप है—साड़ीवालोंका। कुछ लोग अपनेको बनारसी साड़ीवाला का नाम देकर बाहर अच्छा रोजगार जमाये हुए हैं। साफ़-साफ़ यह नहीं कहेंगे कि बनारसमें ठिकाना नहीं लगा अथवा अन्य जगहोंकी साड़ीकी पूछ नहीं है और बनारसी साड़ीके नामपर अच्छा पैसा मिल जाता है, इसलिए यह रूप धारण किया है। ऐसे लोग सिर्फ़ बनारससे साड़ी मंगाकर बेचते हैं। असली बनारसी कारीगर बनारसके बाहर कभी नहीं जाता गत कई वर्षोंमें भारतके बँटवारेके बाद कुछ लोग पाकिस्तानतक टहल आये और फिर वापस आकर बस गये। इसलिए नहीं कि वहाँ कारीगरोंकी पूछ नहीं हुई, बल्कि इसलिए कि बनारसके बाहर उनकी कलाकी क़ीमत आँकनेवाला कोई मिलता नहीं। बनारसमें रहकर वे यहाँ ग़रीबी और मुँहताजी भले ही स्वीकार कर लेंगे; लेकिन पाकिस्तानकी बादशाहत उन्हें स्वीकार नहीं। एकबार बनारसी साड़ीके कलाकारोंको भूखों मरनेकी बारी आयी तो वे बरुणा नदीके पास जाकर इबादत करते रहे कि इस पीड़ाको दूर किया जाय। यदि उन्हें बनारससे मुहब्बत न होती तो कहीं भी जाकर अपना कारबार कर सकते थे। जहाँ हजारों नकली बनारसी कमा-खा रहे हैं, वहाँ कुछ असली बनारसी कारीगर कमा-खा सकते थे, लेकिन उन्हें यह पसन्द नहीं था कि जिस शहरमें वे पनपे, इज्ज़त कमाई और कलाकार बने—उस शहरकी मुहब्बतको कुछ तकलीफ़ोंकी वजहसे छोड़ देते। यही वजह है, आज भी लाख मुसीबत झेलते हुए वे बनारसमें पड़े हुए हैं। इन्हींकी वजहसे बनारसी साड़ियोंका नाम सारे संसारमें रौशन है।

चौथा ग्रूप सुर्तीवालोंका है। भारतके छोटे-बड़े शहरोंमें बनारसी ज़र्दाके एकमात्र विक्रेता बन बैठे हैं। माना कि यह प्रचारका युग है—रोज़गार है, लेकिन एक बनारसी सुर्ती विक्रेता अपनी दूकानपर अन्य घासलेटी

सुर्ती बेचना पसन्द नहीं करेगा, लेकिन कई शहरोंमें बनारसी जर्दाके नामपर अन्य सुर्तियाँ भी बेची जाती हैं। जिस प्रकार बी० एस० सी० कम्पनीका साइनबोर्ड लगाये जूतेके दूकानदार बाटा कम्पनीके जूतोंके अलावा अन्य कम्पनियोंके चालू जूते भी बेचा करते हैं, ठीक उसी प्रकार ऐसे बनारसी सुर्तीवाले भी कई शहरोंमें कमा-खा रहे हैं। अब अगर उस शहरमें बनारसी जर्देकी खपत नहीं है तो बनारसको क्यों बदनाम करते हैं। इससे अच्छा होगा कि आप यह साइनबोर्ड टाँग दें कि 'यहाँ बनारसी जर्दा भी बिकता है।' जिसे बनारसी जर्देका चस्का होगा स्वयं खरीदकर खायगा।

बनारसका लेबिल लगाकर अगर किसी चीजपर सबसे अधिक घपला होता है तो वह है—लँगड़ा आम। बनारसका लँगड़ा आम—नाम सुनकर देश ही नहीं; विदेशोंमें भी लोगोंकी जिह्वापर 'मुखरस गंगा' लहर उठती है। यही कारण है कि लँगड़ा आम बनारसमें, वर्षमें अधिक-से-अधिक दस-पन्द्रह दिन दिखाई पड़ता है। भाई लोग लँगड़े आमके मामलेमें स्वयं बनारसियोंको ही आसानीसे धोखा देते हैं।

कहनेका मतलब यह है कि इस प्रकार लोग बाहर जाकर अपनेको बनारसी कहते हैं। क्या ऐसे लोग बनारसी हैं? 'कत्तई' नहीं। यह तो बनारसके नामका प्रताप है कि लोग कमा-खा रहे हैं।

बनारसके बनारसी

अधिक दूर क्यों, खास बनारसमें रहनेवाले सभी बाशिन्दे बनारसी नहीं हैं। इसमें कितने नकली हैं और कितने असली—इस भेदको जाननेके पहले ज़रा और पीछे चलना पड़ेगा। काशीके इतिहाससे यह ज्ञात होता है कि पूर्वकालमें काशीकी अधिकांश भूमि जंगलोंसे आवृत थी। अत्यन्त पवित्र तथा तीर्थभूमि रहनेके कारण अधिकतर ब्राह्मण रहते थे। ब्राह्मणोंके बाद जनसंख्याकी दृष्टिसे अहीरोंका दूसरा नम्बर था। इन

लोगोंकी सेवाके लिए कुछ शूद्र भी रहते थे। इन तीनों जातियोंके अलावा अन्य कोई जाति नहीं थी। 'मुक्ति-क्षेत्र' होनेके कारण पहले लोग अन्तिम कालके समय यहाँ आते थे। पहले यह प्रथा थी कि घरका कोई व्यक्ति जो बीमारीसे या अन्य किसी कारणवश मरणासन्न हो जाता था उसे गंगायात्री मानकर काशी ले आते थे। ऐसे लोग श्मशानमें असहाय अवस्थामें तबतक पड़े रहते थे जबतक इस दुनियासे सफ़र न कर जायँ। उनके मरनेके बाद ही उनके साथ आये व्यक्ति, उनके घर वापस जाते थे। कभी-कभी श्मशानकी शुद्ध हवा पीकर जब मरणासन्न व्यक्तिमें स्वस्थ होनेके लक्षण दिखाई देने लगते थे तब साथ आये व्यक्ति उसका गला घोंट देते थे। कभी-कभी उसे असहाय अवस्थामें छोड़कर चल देते थे। ऐसे व्यक्ति जब स्वस्थ हो जाते तब पुनः अपने कुनबेमें वापस नहीं जा पाते थे। अपने परिवारमें वे मृत मान लिये जाते थे। गंगायात्री व्यक्तिको यह अधिकार नहीं था कि वह पुनः अपने गाँव वापस जाय। कभी-कभी साथ आये व्यक्ति मरणासन्न व्यक्तिसे अधिक प्रेम रखनेके कारण उनके साथ यहाँ रह जाते थे। इस प्रकार गंगायात्री और उनके परिवारके लोगोंसे काशीकी आबादी बढ़ती गयी। फिर धीरे-धीरे हर वर्गके लोग यहाँ आकर बसते गये।

इसके बाद आया यहाँ संन्यासियोंका जत्था। गंगायात्रीवाले यहाँ आकर ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा देते, उनसे कथा सुनते और अन्तकालमें मर जाते थे। इनकी दक्षिणाकी रेट बड़ी 'हाई' थी। कुछ लोगोंने देखा— गंगायात्रियोंकी सारी रकम धर्मके नामपर ये ब्राह्मण हज़म किये जा रहे हैं तो उन्होंने यह धन्धा शुरू किया। वे भी घर-घर जाकर मधुकरी लेने लगे। उन्होंने यजमानोंकी सुविधाके लिए यह शर्त रखी—हम दक्षिणा नहीं लेंगे, सिर्फ भोजन लेंगे। अग्नि नहीं छुएँगे, सिला हुआ कपड़ा नहीं पहनेंगे। ब्राह्मणोंका पत्ता काटनेके लिए इनका एक समुदाय बन गया।

बनारसका प्रायः हर व्यक्ति दार्शनिक है। अगर एक चाण्डाल शंकराचार्यको ज्ञानका उपदेश दे सकता है तो यहाँका पण्डित क्या नहीं

कर सकता ? यहाँके लोग कितने पहुँचे हुए सन्त हैं, इसका अन्दाजा यहाँ गर्मियोंके मौसममें देखा जा सकता है। शहरके हर क्षेत्रमें बड़े-बड़े दार्शनिक टहलते हुए नजर आते हैं। दर्शनके गूढ़ रहस्योंकी व्याख्या खुलेआम करते हैं। अब उससे लाभ उठाना न उठाना आपका कर्तव्य है। कुछ लोग इन दार्शनिकोंको 'पागल' कहते हैं। यदि ये सचमुच पागल हैं तो क्यों नहीं सरकार इन्हें पागलखाने भेज देती। सरकार इस बातको जानती है कि ये पागल नहीं हैं—सबके सब पहुँचे हुए सन्त हैं। गीता, रामायण, महाभारत, क़ुरान और बाइबिलके अनेक उपदेश बकते रहते हैं।

इसके बाद एक फौज आयी–विधवाओंकी। जहाँ घरमें नयी बहू आयी और उससे सासकी पटरी नहीं बैठी—बस चली आयी काशीवास करने। फिर जबतक उनकी अर्थी नहीं उठेगी—जानेका नाम नहीं लेतीं। सिर्फ़ प्रौढ़ा विधवाएँ आतीं तो ग़नीमत थी। इनके साथ कुछ ऐसी महिलाएँ भी आयीं जो विधवा नहीं थीं। अगर भरी जवानीमें कोई विधवा, सधवा या कुमारी महिलाने ग़लत क़दम रखा तो अपनी नाक बचानेकी गरजसे परिवारके लोग ग्रहणके मौक़ेपर या तीर्थयात्राके नामपर काशीमें लाकर उन्हें छोड़ देते थे अर्थात् इन महिलाओंके लिए बनारस अण्डमान-निकोबार द्वीप बन गया। इस प्रकारकी कहानियोंकी कमी हिन्दी-साहित्यमें नहीं है। यदि उनका संस्करण बन्द न हो गया हो तो आज भी पढ़ सकते हैं।

चौथी फौज उन लोगोंकी आयी जो जिन्दगीभर दूसरोंको सताते रहे, जरायम पेशा करते रहे और अन्तिम कालमें रिटायर्ड होते ही बनारसमें आकर बस गये, ताकि गंगास्नान और विश्वनाथ दर्शनसे सारे पाप धुल जायँ। बनारस क्या हो गया, मुक्तिदानका कार्यालय हो गया। मज़ा यह कि ऐसे लोग भी अपनेको पक्का बनारसी कहते हैं।

अन्तिम दल उन लोगोंका आया जो नौकरी और रोज़गारके सिलसिलेमें आकर बनारसमें बस गये। ऐसे लोग भी बड़े गर्वसे अपनेको बनारसी कहते हैं। अभी जुमा-जुमा आठ रोज हुए आपको आये, दूधके दाँत भी नहीं गिरे अर्थात् न अच्छी तरह आपने बनारस छाना, लेकिन अपनेको पक्का बनारसी समझने लगे। ऐसे लोग महीनेमें दस खत, एक मनीआर्डर अपने गाँव भेजते हैं और स्वयं एकबार सालमें वहाँका चक्कर काट आते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो बनारसमें रहते हुए भी बनारसको 'कण्डम', 'गदाई' और 'लोफ़रोंका शहर' कहते फिरेंगे। ऐसे लोगोंमें उनकी ही संख्या अधिक है जिन्हें 'बनारसी' बननेके प्रयत्नमें मुँहकी खानी पड़ी है। बेचारोंको खिसियानी बिल्लीकी तरह खम्भा नोचते देखकर सच्चे बनारसियोंके मुखसे सहानुभूतिके शब्द निकल जाते हैं—'बउरायल हो।'

हजरत रहते है बनारसमें, लेकिन अखबार पढ़ेंगे कलकत्ता, पटना, अमृतसर, दिल्ली और नागपुरके। उनका बनारसके समाचारसे कोई ताल्लुक नहीं। इससे साफ़ स्पष्ट है कि ऐसे लोग बनारसको अपना नहीं समझते।

अब आप ही सोचिये, क्या ऐसे लोग बनारसी हैं? क्या इनमें कभी बनारसीपन आ सकता है? जब यही लोग तीन-चार पुश्त रह जायँगे और इनकी औलादोंमें बनारसी हवाका असर हो जायगा तब वे गर्वसे अपनेको बनारसी कहने लगेंगे—फिर भी रहेंगे अधकच्चरे ही।

असली बनारसी

एक बनारसी जो सही मानेमें बनारसी है, जिसके सीनेमें एक धड़कता हुआ दिल है और उस दिलमें बनारसी होनेका गर्व है, वह कभी बनारसके विरुद्ध कुछ सुनना या कहना पसन्द नहीं करेगा। यदि वह आपसे तगड़ा है तो ज़रूर इसका जवाब देगा, अगर कमजोर हुआ तो

गालियोंसे सत्कार करनेमें पीछे न रहेगा। बनारसके नामपर कलंकका धब्बा लगे ऐसा कार्य कोई भी बनारसी स्वप्नमें भी नहीं कर सकता। जिसे अपने बनारसपर नाज है, बनारसके अलावा अन्य जगह जिसे 'गदाई' लगती है, जो बनारसके बाहर जाकर बेचैन रहता है, भले उसे वहाँ स्वर्गीय सुख प्राप्त हो, पर हमेशा तकलीफ महसूस करता रहे—वही असली बनारसी हैं।

अगर वह घरके भीतर गावटीका गमछा पहनकर नंगे बदन रहता है तो वह उसी तरह गंगास्नान या विश्वनाथदर्शन भी कर सकता है। उसके लिए यह जरूरी नहीं कि घरमें फटी लुंगी या निकर पहनकर रहे और बाहर निकले तो कोट-पतलून पहने। दिखावा तो उसे पसंद नहीं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह दरिद्र है या कपड़ोंका उसे शौक़ नहीं। वह कपड़ोंका या सफाईका कितना शौकीन है, इसका अन्दाजा घाटपर और उसके घरपर लग सकता है।

आजकल बड़े शहरोंमें लोग घरपर मेहमान आ जानेसे चिढ़ जाते हैं, पर बनारसी चिढ़ता नहीं। उसके लिए मेहमान भगवान्से कम नहीं होता। वह क्या करे, कौन-सी निधियाँ लाकर इकट्ठी कर दे कि मेहमान प्रसन्न हो उठे—भरसक यही प्रयत्न कराता है। मेहमानके स्वागतमें वह पलकोंके पांवड़े बिछा देता है। चलते-चलते वह मेहमानको पूरे बनारससे परिचित ही नहीं कराता बल्कि कुछ ऐसे मधुर संस्मरण भी दे देता है कि मेहमानका हृदय आनन्दसे गद्गद हो उठता है। फिर शायद ही वह बनारसके प्रवासको भूल सके। लेकिन यह याद रखें कि बनारसकी संस्कृति अपनी है। एक बनारसी आपको जिस कदर रखना चाहे, उसी प्रकार रहें, तभी वह आपका सम्मान हृदयसे करेगा।

मस्त रहना बनारसियोंका सबसे बड़ा गुण है। इस हाइड्रोजन बमके युगमें जब कि चारों तरफ हाय-हाय मची हुई है, मार्क्सवाद-डालरवादका

झगड़ा चल रहा है, ऐसे समयमें भी बनारसी लोग अपनी मस्तीसे अलग रहना पसन्द नहीं करते। हड़ताल हो या तूफान आये, पर बनारसी दैनिक कर्मोंमें व्यवधान नहीं आने देता। गैबीपर गहरी छनती है, उस पार दिव्य निपटानके बाद स्नान करते हैं, तब जाकर उनकी काया तृप्त होती है। बनारसियोंमें सबसे बड़ा गुण है—आत्मीयता। यदि आप परदेशी हैं, रास्ता भूल गये हैं तो आपको वह सही रास्ता ही नहीं बतायेगा, बल्कि खाली रहने पर मंज़िले मक़सूद तक पहुँचा देगा। ऐसी आत्मीयता अन्यत्र दुर्लभ है।

बनारसी स्वभावका बहुत उदार और विशाल हृदयवाला होता है। भगवान् शंकरके नागरिकोंको गरीबी भले ही मिली हो, पर उन्हें सन्तोषका गुण सबसे अधिक मिला है। वह जो कुछ करेगा या कहेगा दिल खोलकर, चाहे आपको बुरा लगे या भला। जरूरत पड़ने पर वह दस-बीससे मोर्चा ले सकता है, मैदानमें दो-तीन लाशें गिरा सकता है। अपनी आन और शानके लिए प्राणोंकी बाजी लगा देना उसके लिए मामूली बात है। एक ओर वह मक्खनकी तरह नरम है दूसरी ओर पत्थरकी तरह सख्त। जब एक बनारसी यह कहे—'इ बनारस हव, धुर्री बिगाड़ देब' या 'जानलऽ बनारस कऽ रहेवाला हई' तब यह समझ लीजियेगा कि अब इससे छेड़खानी करना कल्याणकर नहीं।

बनारसियोंके दिलमें इस बातकी बड़ी कसक रहती है कि बड़े-बड़े विदेशी नेता जब कभी बनारस आते हैं तब इतना पर्दानशीन होकर चलते हैं जैसे मुगलकालमें बेगमें जाती थीं। बनारस आकर अगर बनारसी गुरुओंकी संगत नहीं की, भाँग नहीं छाना, साफा नहीं लगाया, गहरेबाजी नहीं की और नावपर सैर नहीं की तो बनारस नहीं देखा। लम्बी-चौड़ी गर्दसे ढकी सड़कोंपर क्या रखा है? टूटे-फूटे घाटोंके किनारे ऊँचे

महलोंमें क्या रखा है ? पुलिसकी संगीनोंके सायेके नीचे आनन्द क्या मिलेगा ? जबतक उस परिधिके बाहर आकर साधारण बनारसियोंसे घुल-मिलकर उनसे परिचय प्राप्त नहीं करेगा, बनारस क्या एक बनारसीको भी कोई समझ नहीं सकेगा ।

: बनारसके राजा :

बनारसके राजाका मतलब आप कहीं काशी नरेश अथवा प्राचीन-कालके काशी नरेशोंसे न लगा बैठें, इसलिए इस विषयपर कुछ कह देना आवश्यक है। भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद 'लौह पुरुष' का धक्का खाकर राजाओंका अस्तित्व सेंटकी तरह उड़ गया। आजकल मन्त्रियोंका जमाना है। राजाओंका अस्तित्व इतिहासकी पुस्तकों और शतरंजकी मुहरों तक ही है। प्राचीन कालमें काशी किन-किन राजाओंके अधिकारमें रही, कितने राजा यहाँके शासक बने—यह सब विषय इतना लम्बा-चौड़ा है कि उसके लिए रीमों कागज़ काला करनेकी जरूरत है। फिर उनसे मतलब क्या? अतएव विषयान्तर न करके अपने विषयपर उतर रहा हूँ।

धार्मिक ग्रन्थों और नागरिकोंके विश्वासके आधारपर यह कहा जा सकता है कि काशी नरेशोंका इस नगरीपर अधिकार भले ही रहा हो परन्तु काशीकी जनता हमेशा बाबा भोलेनाथको ही अपना राजा मानती आयी है। बाबा भोलेनाथ हमेशा नगरके मध्य अपनी फेमिलीके सहित रहते आये हैं। आज भी वे अन्नपूर्णा, गणेश और अपनी पूरी कचहरीके साथ जमे हुए हैं। हिमालयसे अपने साले (सारनाथ) को बुलाकर एक इलाका उन्हें भी दे दिया है। लोगोंका दुःख-सुख सुनते हैं। जिनका नहीं सुनते वे लोग उनकी पत्नी अन्नपूर्णा या उनके कोतवाल भैरवनाथके यहाँ जाकर सिफारिश करते हैं। यही वजह है कि काशीकी जनता इनपर अगाध श्रद्धा रखती है। इनके पास जानेके लिए न विजटिंग कार्ड भेजनेकी आवश्यकता है और न ट्रंककाल करके टाइम फिक्स करनेकी ज़रूरत। न अचकन-चपकन पहननेकी ज़रूरत है और न गांधी ब्राण्ड। किसी भी अवस्थामें, किसी भी समय आप उनसे जाकर

मिल सकते हैं। सिर्फ बम-बम या घंटा बजाकर उनके नशेको दूर करनेकी आवश्यकता पड़ती है। प्यारसे उनके बदनपर हाथ फेर सकते हैं, उन्हें नहला सकते हैं, सरपर हाथ फेरकर भक्ति दिखा सकते हैं, गो कि कुछ दिन यह छूट नहीं रह गयी थी कुछ हरिजनोंने और कुछ उनके पर्सनल असिस्टेण्टोंने झगड़ाकर उन्हें जँगलेमें बन्द कर दिया था। तब वे सिर्फ नुमाइशी जीव बन गये थे, झरोखेसे झाँकी मात्र देते थे।

इनके पास जानेके लिए डाली या उपहार ले जानेकी जरूरत नहीं है। एक गिलास पानी काफी है। अगर आप वह भी न ले जाना चाहें तो कोई हर्ज नहीं—खाली हाथ जाइये। भक्तिका पारा हाई हो तो एक पैसेकी माला और कुछ बेलपत्र काफी है। काशीके ये राजा जिसपर खुश होते हैं—छप्पर फाड़कर धन देते हैं, मुँहमाँगी मुराद मिल जाती है। अपुत्रकको दर्जनों बच्चे, रोजीरोजगारमें बरक्कत, मुकदमेमें जीत, गरीब-मुँहताजको जमीनमें गड़े मोहरोंका पता और अन्तकालमें मोक्षका सार्टिफिकेट तो साधारण बात है। कहा जाता है कि जो लोग अधिक पाप करते हैं या जिनपर विश्वनाथजीकी मुक्ति सार्टिफिकेट काम नहीं करती, वे केदार-नाथजीके इलाकेमें जा बसते हैं। इनका अपना एक अलग इलाका है। यह इलाका महर्षि वेदव्यासके झमेलेके कारण बसाया गया है। कुछ लोगोंने (जिनके पास दिव्यचक्षु हैं) मणिकर्णिका घाटपर मुर्दोंके पास शंकर भगवान्‌को साक्षात्‌रूपमें उनके कानोंमें कुछ कहते देखा है। लेकिन यह तयशुदा बात है कि काशीमें शंकरका ही राज्य है। यहाँके हर गली-कूँचेमें वे विराजमान हैं।

उनकी नींद इतनी गहरी होती है कि उन्हें जगानेके लिए हिन्दू जनता सुबह होते ही गाल बजाते हुए 'हर हर महादेव शम्भो काशी विश्व-नाथ गंगे' के नारोंसे काशीका कोना-कोना गुलजार कर देती है।

आजकल प्रत्येक प्रान्तकी ग्रीष्मकालीन राजधानियाँ बन गयी हैं। मेरी समझसे लोगोंने यह प्रेरणा शंकर भगवान्‌से ही ली है। शंकरकी ग्रीष्म-

कालीन राजधानी कैलास है। भक्तोंका कहना है कि यहाँकी गर्मीसे घबराकर वे कैलास चले जाते हैं। पण्डितोंका कहना है कि द्वितीय विवाहके पश्चात् उन्हें ससुरालसे अधिक मोह हो गया है, इसलिए चार माह ससुराल जाकर मौज-पानी लेते हैं। कुछ प्रगतिशील विचारवालोंकी राय है कि अपनी द्वितीय पत्नी गंगासे मिलनेके लिए जाते हैं। इस तर्कमें कौन कितना सही है, यह तो मैं नहीं जानता। यदि भोले बाबा कभी किसी पत्र-कारको इण्टरव्यू दें तो सही बात प्रकाशमें अवश्य आ जाय।

यह निश्चित है कि जब राजा राजधानीमें नहीं रहेगा तो राज्यशासन में कुछ गड़बड़ी हो ही जाती है। फलस्वरूप ये चार महीने बड़े मुश्किलसे गुज़रते हैं। अक्सर जब वे कैलाससे जल्द वापस नहीं लौटना चाहते—जिसका पता यहाँ तुरन्त पानी बरसनेमें देर होते देख लग जाता है—तब भक्तोंका दल गंगाका पानी घड़ेमें भरकर मन्दिरोंमें लाकर छोड़ने लगता है। इतना पानी छोड़ा जाता है कि पानीकी वह धारा एक छोटी नदीका रूप धारण कर लेती है। शायद भक्तोंकी इस हरक़तकी सूचना उन्हें मिल जाती है और वे तुरत नन्दी पर सवार होकर चल देते हैं। ये चार महीने वे शान्तिसे बितानेकी गरजसे कैलास जाते जरूर हैं पर वहाँ भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती। उन दिनों समूचे भारतके आस्तिकजनोंका दल पर्वतीय भूमिको गुलज़ार कर देता है। इधर काशीकी जनता उन्हें अलग परेशान करती है। कैलाससे वापस आनेपर उन्हें और ही दृश्य देखनेको मिलता है। उनके भक्त-गण उनसे नाराज़ होकर दुर्गादेवी, लक्ष्मीदेवी, संकटमोचन और सारनाथके उपासक बन जाते हैं। यह दृश्य देखकर उन्हें कितना सदमा होता है यह तो पता नहीं, पर वे इस बातकी प्रतिज्ञा जरूर करते होंगे कि आगेसे वे ससुरालमें ऐसी लम्बी नहीं लाना करेंगे। तीन-चार माह बाद कहीं भक्तोंका मिजाज़ ठीक होता है और तब पुनः पहले जैसा उनका सम्मान होने लगता है। लेकिन हर साल गर्मी आते ही उनका मिजाज़ खड़बड़ा जाता है और इधर उनके भक्त भी

कम नहीं। उन्हें अपनी उचित शिक्षा देनेका हथकण्डा ज्ञात है। अब तो दोनों ही इस बातके आदी हो गये हैं। किसीको किसीसे शिकायत नहीं।

काशीनरेश

भोले बाबाके जीवित संस्करण हैं—काशीनरेश। राह-बाट कहीं भी मुलाकात हो, आप 'हर हर महादेव' की आवाज लगाइये, वे स्वयं आपको सलाम करेंगे। काशीकी जनता अपने इस नरेशका जितना सम्मान करती है उतना किसीका नहीं। एकबार जब सारिपुत्त–महा मोद्गल्यायनकी अस्थियाँ सारनाथ आयी थीं, उस समय माननीय पन्तजी से लेकर विदेशोंके अनेक राजदूत, सिक्कमके राजकुमार, मंत्री और अधिकारी उपस्थित थे। काशीकी जनता उन्हें देखती रही। लेकिन ज्योंही महाराज बनारस आये और अस्थि कलश हाथमें लिया—'हर हर महादेव'के नारोंसे सारा सारनाथ काँप उठा। महाराजा साहबके पीछे–पीछे भीड़ चल पड़ी। अन्य महानुभावोंका वही महत्व हो गया जो लँगड़े आमके आगे खरबूजेका हो जाता है।

काशीके नागरिक काशी नरेशके आगे बड़ों-बड़ोंको बामुलाहिजा गरदनियाँ दे देते हैं। यही वजह है जब जहाँ मौका मिला 'हर हर महा-देव'के नारोंसे उनका स्वागत करते हैं। एकबारकी बात है, कुछ गुरु लोग भाँग छानकर दुर्गाजीके मन्दिरके पास मैदानमें निपटान देने जा रहे थे। हाथमें हड़िया, तनपर लंगोट और कानपर यज्ञोपवीत चढ़ा था। ठीक इसी समय महाराजा साहबकी मोटर आ गयी। ऐसी हालतमें उनसे आँखें चुरा लेना स्वाभाविक धर्म नहीं माना जाता। गुरु लोगोंने आव देखा न ताव, हँड़िया नीचे रख दोनों हाथ उठाकर 'हर हर महादेव' की आवाज बुलन्द कर ही दी। भले ही महाराजा साहबने उन लोगोंको न देखा हो, पर आदतके अनुसार हाथ उठाकर उन्होंने भी अभिवादन किया। उनकी इस सतर्कतासे काशीकी जनता निहाल हो जाती है।

स्वयं महाराजा साहब भी बनारसियोंसे कम मुहब्बत नहीं करते। उस पारकी सारी जमीन, दुर्गाजीका मंदिर, लंका, वेदव्यासजी की भूमि बनारसियोंको नहाने-निबटने, भाँग छानने और तफरीह करनेके लिए छोड़ दी है। सालमें एकबार काफी धूमधामसे महीनोंतक रामलीला करवाते हैं। उन दिनों बनारसकी आधी जनता गहरेबाजपर सवार होकर उसपार पहुँचती है। सालमें स्वयं एकबार महाराजा भरत-मिलाप देखने चले आते हैं। विश्वनाथ दर्शन या कोठीपर आराम करने भी आते-जाते रहते हैं। बनारसी जनतासे काशीके इस राजाका सम्पर्क बहुत दिनोंसे इस प्रकार स्थापित है और आगे रहेगा भी।

अन्य राजा

काशी नरेशके अलावा काशीमें कुछ ऐसे भी राजा हुए जो आज भी राजाके नामसे पुकारे जाते हैं। मसलन राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द, राजा औसानसिंह, राजा बलदेवदास बिड़ला और राजा मोती-चन्द। इन लोगोंको ब्रिटिश सरकारकी ओरसे राजाकी उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं और तबसे इनके नामके आगे यह शब्द जुड़ा हुआ है। इनमें राजा बलदेवदास और राजा मोतीचन्दने काशीकी जनतासे सम्पर्क स्थापित कर कुछ सेवाकार्य भी किया है। कुछ ऐसे स्मारक बनवाये हैं कि आगे आनेवाली पीढ़ी भी इनका यशोगान करती रहेगी।

यों काशीमें अनेक राजाओंकी कोठियाँ मौजूद हैं और काशीके निर्माणमें लगभग सभीने भाग लिया है, पर जनता उन नरेशोंको अधिक मान्यता नहीं देती। काशीवासी मौज-पानी लेनेके लिए प्रसिद्ध हैं। इसके लिए वे अपना सब कुछ लुटा देनेको तैयार रहते हैं। जो लोग इनके इस आनन्दमें शरीक होते हैं, वे ही इनके लिए राजाके तुल्य हैं। महाराजा कुमार विजयानगरम् इसी कोटिके राजाओंमें हैं। काशीकी जनता इन्हें 'राजा इजानगर' कहती है। कहा जाता है लक्साकी राम-

लीलाका प्रारम्भ स्वयं इन्होंने करवाया था। उन दिनों चार ब्राह्मणके लड़के और लड़कियाँ खोजकर प्रत्येक वर्ष राम-लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न और उनकी पत्नियोंके लिए चुने जाते थे। बाकायदा विवाह आदि समस्त कार्य रामलीलाके अन्तर्गत किया जाता था। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लीलामें उनसे अभिनय करवाकर उन्हें छोड़ दिया जाता था। इस प्रकार प्रति वर्ष चार ब्राह्मण बच्चोंका विवाह ब्राह्मण कुमारियोंके साथ हो जाता था और उनके माता-पिता इस खर्चसे बच जाते थे।

बेताजके बादशाह

इन राजाओंके अलावा काशीमें दो अन्य राजा हैं, जिन्हें सरकारने उपाधि नहीं दी और न उनका कहीं राज्य है। बनारसकी जनताकी ओरसे उन्हें राजाकी उपाधि प्राप्त है। उनमें राजा किशोरीरमण आज भी जीवित हैं। वर्तमान समयमें लक्सा रामलीलाका भार इन्हींपर है। रामनगरकी लीलाके बाद लक्साकी रामलीलाका ही महत्व है। चूँकि काशीकी जनताका इससे अधिक मनोविनोद हो जाता है और सालमें कुछ दिनोंतक उनकी कोठीमें लोग मौज-पानी लेते हैं, बस इसी खुशी-यालीमें लोग उन्हें राजा कहकर पुकारने लगे।

काशीके दूसरे राजा हैं—स्व० शिवप्रसाद गुप्त। कहा जाता है जब तक वे जीवित थे, काशीकी नाक थे। कभी कोई माँगनेवाला उनके यहाँसे खाली हाथ नहीं लौटा। काशीकी गरीब जनता उन्हें दानवीर कर्ण मानती रही। बनारसके नागरिक कब क्या चाहते हैं, इसका उन्हें अनुभव था। यद्यपि उनकी देन कम है, पर उनकी महानता इस देनसे कहीं अधिक है। इनके बारेमें जनतामें अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि एकबार दंगेके समय जब काशीकी जनतापर छः हजार रुपये प्यूनिटी टैक्स लगा तब बाबू शिवप्रसाद गुप्तने ब्रिटिश सरकारसे कहा कि मैंने आपको २,२०,०० रुपया कर्ज दे रखा है। उसमेंसे ६०,००

रुपया टैक्सकी रकम काटकर बाकी १,६०,०० हजार रुपया चाँदीके सिक्के मुझे वापस कर दीजिये। ब्रिटिश सरकारके खजानेमें इतना सिक्का नहीं था, इसलिये उसने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। यह बात अपनेमें कहाँ तक सच है, यह तो पता नहीं, पर आज भी बड़े-बूढ़े इस बातको दुहराते हैं।

कुछ लोगोंका विचार है कि काशीमें रेडियो स्टेशन सरकार सिर्फ इसलिए नहीं लगा रही है कि उसके पास पैसेकी कमी है। यदि आज बाबू शिवप्रसाद गुप्त जीवित होते तो शायद उतनी रकम सरकारको देकर रेडियो स्टेशन खुलवा देते। कहनेका मतलब आज भी काशीकी जनताके हृदयमें इस बेताजके बादशाहके प्रति काफी इज्जत है। बनारसके हड़तालके इतिहासमें बाबू शिवप्रसाद गुप्तके निधन दिवसपर जैसी जबर्दस्त हड़ताल हुई, वैसी महात्मा गाँधी, महामना मालवीयके निधन दिवसके अलावा अन्य किसीके निधन दिवसपर नहीं हुई थी।

बनारसके राजाओंका एक जानदार वर्ग स्वयं यहाँके अलमस्त निवासी हैं। सवेरेके समय गंगाके घाटों तथा मन्दिरोंके आसपास अगर आप टहलनेका कष्ट करें तो—'का राजा, नहाके आवत हउवा ?' चौंककर देखेंगे तो पायेंगे, जिसे 'राजा' सम्बोधित किया गया है, वह कमरमें गावदीका भीगा गमछा लपेटे कोई फक्कड़ बनारसी होगा। 'राजा' यहाँका परम पवित्र सम्बोधन है, जिस तरह 'मिस्टर' 'महाशय' और महोदय आदि।

: बनारसी रईस :

हिन्दुस्तानमें नवाबोंकी नगरी लखनऊ और रईसोंकी नगरी बनारस है। हाँ, अगर आप इन दोनों शहरोंके बाशिन्दे न हुए तो नाराज हो सकते हैं। इसलिए पहले आपकी नाराजगी दूर कर दूँ। सर्चलाइट लेकर तलाश करनेपर हिन्दुस्तानके हर गली-कूचेमें रईस और नवाब खचियों मिल जायेंगे पर जो सिफ्त बनारसी रईसोंमें है और जो नजाकत लखनवी नवाबोंमें है, वह उनमें कभी नहीं पाइयेगा। आधुनिक युगमें करोड़पति या लखपति जाड़ेके दिनोंमें अधिकसे अधिक दो या तीन लिहाफ ओढ़ता होगा। अगर यही बात किसी लखनवी नवाबसे पूछिये तो किस दिन कितना जाड़ा पड़ा था इसका नाप-जोख वह लिहाफोंकी संख्यामें बता-येगा। *है दुनियाके किसी ठण्डे मुल्कमें बसे नवाबोंमें यह नजाकत?* ठीक इसी प्रकार बनारसी रईस भी भोजनमें पीसे हुए बासी मसालेकी शिकायत-से लेकर बिस्तरकी तीसरे चद्दरकी सिकुड़नका बयान दे सकता है।

रईस कौन ?

सच पूछिये तो रईस न तो किसी साँचेमें ढाले जाते हैं और न किसी फैक्टरीमें बनाये जाते हैं। उन्हें मार पीटकर भी रईस नहीं बनाया जाता। रईस लोग अपनी प्रवृत्तियोंके कारण बनते हैं। मेरा मतलब उन रईसोंसे नहीं है जो जलपान गृह, रेस्तरां और सिनेमाके पास विचरण करते हुए अपने मित्रोंसे कह उठते हैं—'आओ यार, तुम भी क्या कहोगे किसी रईससे पाला पड़ा था।' याद रखियेगा, रईसी किसीकी बपौती नहीं है और न किसी जाति विशेषकी अमलदारी। रईस हर वर्गका हर व्यक्ति बन सकता है, बशर्ते उसमें नफ़ासत हो, नज़ाकत हो और शराफ़त हो।

बनारसी रईसीका मतलब साधारण तौरपर उदारता और शाहखर्चीसे लगाया जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अनैतिक कार्योंमें भी शाहखर्च बननेवाला रईसकी उपाधि पा जाय। बनारसी रईस उस व्यक्तिको कहा जाता है जो व्यक्तिवादी नहीं होता और जन समारोहोंमें अपना परिचय विलक्षण मुक्तहस्तीसे देता है। लगे हाथ एक उदाहरण सुन लीजिये।

आधुनिक हिन्दी साहित्यके जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे अधिकांश लोग परिचित हैं। बनारसमें अनेक साहित्यिक पैदा हुए और होते रहेंगे, पर इनकी उदारताका गुणगान आजके प्रत्येक काशीवासीकी जबान पर है। इनकी रईसी देखकर एकबार काशी नरेशके मनमें भी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने कहा था—'बबुआ, एत्तरे खर्चा करबा त एक दिना बाप-दादाका बिरासत छूनके रह जाई······'

भारतेन्दुने छूटते ही जवाब दिया—'इस धनने मेरे दादाको खाया, मेरे बापको खाया और अब मुझे भी खा जाना चाहता था। इसलिए मैंने सोचा लाओ मैं ही इसे खा जाऊं। न रहे बाँस और न बजे बाँसुरी।'

स्मरणीय कविसम्मेलन

भारतेन्दु कितने बड़े रईस और साहित्य प्रेमी थे निम्नलिखित उदाहरणसे जाना जा सकता है—

एकबार इनके यहाँ तीन दिनों तक अखण्ड कवि सम्मेलन होता रहा। पन्द्रह-बीस हलवाई पूड़ी-तरकारी बनाते रहे। कुछ लोग भाँग घोटते रहें। बाहरी मेहमान और कवि गण खाते-पीते-सोते और कवि-सम्मेलनमें भाग लेते रहे। लेकिन सम्मेलन कुछ देरके लिए भी रुका नहीं। सारा शहर उलट पड़ा था। है कोई मां का लाल जो आजके युगमें इतने कवियोंका तीन दिनोंतक खर्चा और नखरा बर्दाश्त कर सके।

बुढ़वा मंगलके वे प्राण थे। उन दिनों बुढ़वा मंगलमें भाग लेनेके लिए काशी नरेश भी आया करते थे। इस उत्सवमें हजारों रुपयोंके सोने-चाँदीका वर्क उड़ जाता था। साहित्यके नामपर इस महान् पुरुषने जितना त्याग किया और दान दिया है, वह आजके युगमें कभी संभव नहीं है।

एकबार दो तमोलियोंको नशा-पानीके लिए कुछ रकमकी आवश्यकता थी। तुरत कहीं इन्तजाम हो नहीं सकता था। बस एकने कुछ तुकबन्दियाँ की और चल पड़े भारतेन्दुके यहाँ। उनके सामने जाकर जब अपनी कविता सुनायी तब उन्हें उनका वास्तविक उद्देश्य समझते देर नहीं लगी। एक दुशाला और एक अंगूठी देते हुए बोले—'कविता तुम्हारे बसकी नहीं है। जाकर पान लगाओ। इसके चक्करमें मत पड़ो।' आजके युगमें कौनसा ऐसा साहित्य प्रेमी या धन्नासेठ है जो तुकबन्दीके नाम पर दुशाला और अंगूठीका दान कर सकता है?

शाहखर्ची और उदारताके अलावा बनारसी रईस कुछ झक्की भी होते हैं। राजाओंके बाद बनारसमें रईसोंका दर्जा माना जाता है। कुछ मानेमें जनता राजाओंसे कहीं अधिक सम्मानित रईसोंको समझती है। जिस प्रकार राजा अपने तमाम प्रजाओंका ख्याल रखता है, उसी प्रकार रईस अपने आश्रितों, अपने परिचितों तथा अपने अंचलके लोगोंका ख्याल रखते हैं। राजा केवल दर्शनीय होता है, अपनत्वके बाहरका व्यक्ति। लेकिन रईस अपने महफिलका आदमी होता है जिससे हर ढंगसे बातचीत की जा सकती है, वह कुछ मानेमें राजाओंसे महान् होता है, उसके इस महानताको कुछ लोग 'सनकीपन' समझते हैं।

अशर्फी सुखायी जाती थी

तीन लोकसे न्यारी काशीमें रईस लोग भी निराले ढँगके हो चुके हैं। काशीमें झक्कड़ साबके घरानेकी अनेक कहानियाँ बच्चोंकी ज़बानपर

चहल-क़दमी करती हैं। इनके बारेमें यह बात अधिक प्रसिद्ध है कि एक-बार आपको यह झक सवार हुई कि सन्दूकोंमें अशर्फियाँ काफी दिनोंसे पड़ी हैं, इन्हें धूपमें डलवाकर सुखा लेना चाहिए। यह सनक सवार होते ही नौकरोंको आदेश दिया गया कि तमाम अशर्फियाँ इकट्ठी करें। जब अशर्फियाँ इकट्ठी की गयीं तब उसके इतने ढेर लग गये कि गिननेके बजाय उन्हें तौलकर सूखनेके लिए ऊपर भेज दिया गया। दिनभर सूखनेके बाद जब पुनः तौली गयी तब उन्हें जानकर आश्चर्य हुआ कि कम क्यों नहीं हुई। फलस्वरूप नौकरोंपर बुरी तरह फटकार पड़ी—सब जांगरचोर हैं, काम ठीकसे नहीं करते। कोई काम ठीकसे नहीं होता।

दूसरे दिन फिर वही क्रिया दुहरायी गयी। अन्तमें नौकरोंने कुछ अशर्फियाँ अपनी जेबमें रख लीं। इस प्रकार जब उस दिन वज़न कम हो गया तब उन्हें विश्वास हो गया कि हाँ, आज अशर्फियाँ सचमुच सुखायी गयी हैं।

झक्कड़ साबकी एक और कहानी इस प्रकार है—आपमें एक आदत यह थी कि शामको पान घुलाकर दो तल्लेमें बैठ जाते थे। जो व्यक्ति खूब साफ कपड़े (बुर्राक) पहनकर उनकी गलीसे गुजरता तो देख-दाख कर उसपर थूक देते थे। यह मानी हुई बात है कि आप जिसपर थूकेंगे वह आपकी इस 'पुनीत-कृपा' पर मौन नहीं रह सकेगा। फलस्वरूप वह व्यक्ति नीचेसे काफी गालियाँ देता था। जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न होते थे। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता था, उसे गदाई कहकर अपने आपमें ही पेंचोताब खाकर रह जाते थे। कम्बख्तने रईसीका रुआब नहीं माना।

हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय किशोरीलाल गोस्वामी महाराज भी यही क्रिया करते थे और झक्कड़ साबकी भाँति आप भी गाली देने-वालेको ऊपर बुलाकर माफी माँगते और नये वस्त्र पहनाकर उसे बिदाकर देते थे।

एक पैसा जुर्माना

काशीके प्रसिद्ध रईस थे—लल्लन-छक्कन। इनका इतना बड़ा तबेला (अस्तबल) है कि आज वहाँ लड़कियोंका सरकारी स्कूल खुल गया है। एकबार इन्हें अजीब सनक सवार हुई। इन्होंने अपनी बग्घीमें इतने घोड़े जुतवाए, जो क़ानूनके खिलाफ़ था। फलस्वरूप इनपर मुक़दमा चला और जुर्माना हुआ। इससे चिढ़कर इन्होंने यह तय किया कि देखें सरकार कबतक कितना जुर्माना करती है। नित्य जुर्माना देते गये और नित्य एक घोड़ा बग्घीमें बढ़ता गया। अन्तमें एक दिन जजने तंग आकर इनपर एक पैसा जुर्माना किया।

जजके इस फैसलेसे चिढ़कर कि क्या मेरी हस्ती एक पैसेकी हो गयी, इन्होंने उस दिनके बादसे बग्घी पर बैठना छोड़ दिया।

बनारसके भीखखूसावका नाम आजके बच्चे-बच्चेकी ज़बानपर है। उनकी दैनिक क्रियाओंका साहित्यमें वर्णन करना अनुचित होगा, इसलिए उनके बारेमें कुछ नहीं लिख रहा हूँ। सच पूछिये तो वे बनारसके दर्शनीय व्यक्तियोंमें एक थे।

बनारसमें रईस कितने हैं, इसका सही आँकड़ा आज भी ज्ञात नहीं हो सका, क्योंकि यहाँका प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ अवश्य है। मसलन यहाँके सभी ब्राह्मण गुरू, अहीर सरदार, क्षत्री ठाकुर साहब, मज़दूर पेशेवाले मिस्त्री, दुकानदार साव-महाजन, यहाँ तक कि सड़कपर झाड़ू लगानेवाला भी मेहतर नहीं जमादार साहब हैं।

समझनेको बनारसका धोबी भी अपनेको रईस समझता है। अगर उसके पीठपर कपड़ेकी गट्ठर न हो अथवा शीतला वाहनके साथ न हो तो उसे किसी कालेजका छात्र या अध्यापक समझा जा सकता है। जिन्हें बनारसी धोबियोंसे पाला पड़ा है वे इस बातको महसूस करते हैं।

नगरपालिका जिस दिन मेहतरोंको वेतन देती है उसी दिन शामको मेहतरोंका दल कलवरियामें अपनी रईसीका जो दृश्य उपस्थित करता है, वह बड़े-बड़े रईसोंके लिए ईर्ष्याका विषय बना हुआ है।

साधारण तौरपर रईस लोग सुबह ८—९ बजेके पहले बिस्तर नहीं छोड़ते। प्रातःक्रिया समाप्त करनेके पश्चात् हज़रतके बदनकी मालिश एक घण्टेतक होती है, फिर नहा-धोकर खा-पीकर आरामसे गाव तकियाके सहारे सटक पीते हुए आराम फ़रमाते हैं। जब दोपहरिया ढल जाती है तब मौसमी फलोंका रस लेते हैं। इसके पश्चात् शामके समय यारोंकी महफ़िल जमती है। उसमें खान-पानका दौर भी चलता है, हर रंगकी बातचीत होती है। बनारसी रईस घरसे बहुत कम बाहर निकलते हैं। कुछ ऐसे भी रईस हैं जिन्हें सड़कपर निकले तीन-चार वर्ष हो गये हैं। छोटे सरकार (लड़का) कारबार देखते हैं और बड़े सरकार घरमें रईसीका आनन्द लेते हैं।

रईसी बनारसवालोंका पैदाइशी हक़ है। हर आदमी मौके-मौके पर अपनी रईसी प्रगट करता है। सबके अन्तमें रईसीका एक अनोखा उदाहरण दे दूँ। बिजलीके पंखे लोग स्वयं अपने उपयोगके लिए रखते हैं, पर सोनारपुरामें एक मिठाईकी दुकानपर टेबिल-फैनसे भट्ठी सुलगानेका काम लिया जाता है। शुद्ध रेशमी परिधानमें मुँहमें पान घुलाये भिखमंगे भी अपनी काशीमें आसानीसे मिल जायँगे, जिनका केवल ऊपरी-खर्च, किसी प्रोफेसरकी तनख्वाहसे अधिक हो बैठता है।

ज़माना था, जब बनारसकी रईसीकी इज्जत होती थी, पर अब तो इत्रका फाहा बनाकर कानमें खोंसनेमें भी अड़चन होती है।

: बनारसके संन्यासी :

और मामलोंमें आप बनारसको भले ही फिसड्डी नगर कह लें, लेकिन धर्मके मामलेमें बनारसवालोंका बड़ा गहरा रंग है। बनारसवाले अपनी 'विलपावर' के जरिये सम्पूर्ण भारतको धार्मिक एकतामें बाँध रखनेमें सफल हुए हैं। धर्मके मामलेमें यहाँकी संसदमें जो प्रस्ताव पास हुए वह सम्पूर्ण देशमें मार्शल-लाकी भाँति लागू हो गये।

भारतकी राजधानीके रूपमें कोई नगर अनादिकालसे रजिस्टर्ड नहीं रहा। इन्द्रप्रस्थ, दिल्ली दौलताबाद, आगरा, और नयी दिल्ली आदि नगरोंको भारतकी राजधानी बननेकी 'टेम्परेरी रजिस्ट्री' हो चुकी है। यद्यपि बनारसने भूलकर भी यह गौरव स्वीकार नहीं किया, फिर भी वह हिन्दू धर्मका रजिस्टर्ड हेड आफिस अनादि कालसे बना हुआ है। इतिहास और धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनसे भी यह पता नहीं चलता कि आर्य धर्मके इस हेड आफिसका कभी स्थानान्तरण हुआ था। अगर कहीं कुछ परिवर्तन हुआ है तो केवल नगरके नाममें। काशी काशिका, स्वर्गपुरी, तीर्थराज्ञी, वाराणसी, बनारस, मुहम्मदाबाद, बेनारेस और अब अपने बाबू साहबकी कृपासे फिर वाराणसी।

धार्मिक महत्ता

बनारसको इतनी धार्मिक महत्ता कब, क्यों और कैसे मिली—इसका उल्लेख कहीं नहीं है, यद्यपि यह बात सही है कि भारतमें प्रचलित सभी सम्प्रदायोंके जन्मदाता अपनी-अपनी थीसिस लेकर बनारस आये। यहाँ उन्हें उचित मार्क-शीट ही नहीं प्राप्त हुई, बल्कि नया धर्म चलानेका लाइसेन्स भी दिया गया। बिना यहाँसे परमिट प्राप्त किये कोई भी धर्म

भारतमें पनपा नहीं। 'भगवान् बुद्ध' से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य 'विहारी' तककी साधना भूमि काशी रही। प्रत्येक सम्प्रदायवालोंके मठ-मन्दिर और अखाड़े यहाँ हैं। सभी धर्माचार्य यहाँकी कसौटीपर रगड़े जा चुके हैं। कहनेको यहाँ तक कहा जाता है कि ईसा मसीह भी काशी आये थे।

स्कन्द पुराणके अनुसार 'त्रिलोकमें वाराणसी सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है।' महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजके मतानुसार 'तीर्थोंमें श्रेष्ठतम तीर्थ काशी ही है, क्योंकि यह कर्मक्षेत्र नहीं अपितु ज्ञानका क्षेत्र है। यहाँ कर्म बीज बपन नहीं किया जाता, पर ज्ञान बीज बपन किया जाता है। इस दृष्टिसे समग्र काशीको गुरुधाम कहा जा सकता है।'

यहाँ तक तो हम मान लेते हैं कि काशी अत्यन्त पवित्र नगरी है। जिसकी चर्चा वेदसे लेकर बौद्ध दर्शन तक और उपनिषद्से लेकर उपन्यासों तकमें हो चुकी है। लेकिन एकबात साफ नहीं होती कि इससे धर्मका क्या सम्बन्ध है?

बहुत संभव है आर्योंमें जब वर्ण व्यवस्था प्रारम्भ हुई तब ब्राह्मण वर्गके व्यक्ति अपना 'रिटायर्ड' काल 'निखद्दम' में बितानेके लिए यहाँ चले आये। उन दिनों काशीमें भयंकर जंगल था। (विश्वास न हो तो ईस्ट इण्डिया कालमें बने बनारस जिलेका नक्शा देखें) मौज-पानीका दिव्य प्रबन्ध था। गुरू बनाम ब्राह्मण लोग यहाँ चले आये। उन्हें भरपेट भोजनके अलावा कुछ नहीं चाहिए था। इस प्रकार जब अधिकांश गुरू लोग यहाँ चले आये तब सार्थमें बच्चोंको शिक्षा देनेवाला कोई नहीं रह गया। इसीलिए उन दिनों लोग अपने बच्चोंको शिक्षाके लिए यहाँ भेजने लगे। गुरुओंको और कुछ काम था नहीं, खाना, निपटना और छात्रोंको ठोंक पीटकर पढ़ाना जीवनका लक्ष्य बन गया। खाली समयमें अपने स्वार्थके लिए उन्होंने जो नियम बनाये—वही धर्म बन गया। इस प्रकार एक ढेलेमें दो शिकार हो गये, अर्थात् धर्मका प्रचार भी हुआ और काशी सम्पूर्ण भारतके लिए शिक्षालय भी बन गया। यही वजह है कि धर्म

और शास्त्रार्थके मामलेमें काशीकी ख्याति आज भी है। आज भी ब्राह्मणों का यहाँ आधिपत्य है। भले ही आप उनकी अवज्ञा करें, पर वे जानते हैं कि जन्म, विवाह और मृत्युके समय आप उन्हें अपने यहाँ अवश्य बुलायेंगे, भले ही आपकी पैदाइश रूसमें हुई हो या आप घोर नास्तिक हों। बिना उनके सहयोगके आप नरकगामी बनेंगे।

संन्यासियोंकी पहली पलटन

हिन्दू धर्ममें ऋषि-मुनियोंकी बड़ी महत्ता है। अधिकतर ऋषि-मुनि ब्राह्मण ही होते थे। ब्राह्मणोंको ही शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी। गैर ब्राह्मणों-को पास फटकने नहीं दिया जाता था। नतीजा यह हुआ कि नाऊ-धोबी बनारस नहीं आ सके। गुरुओंकी दाढ़ी, जटा बढ़ने लगी, कपड़े चीथड़े हो गये, उनका एक अजीब रूप हो गया। आगे चलकर ये ही लोग ऋषि-मुनि कहलाने लगे। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि हमारे ऋषि-मुनि पण्डित थे और विवाहित होते थे। ऐरे-गैरेको चेला बनाकर अपनी इज़्ज़त अपने हाथसे नहीं गँवाते थे। गृहस्थोंके लिए सर्वदा मंगल-कामना करते थे। उनदिनों खाने-पीनेकी कमी रही नहीं, मार्क्सवाद-पूँजीवादका झगड़ा नहीं था, डालरवाद-स्टर्लिंगवादकी समस्या नहीं थी, नाटो-सीटो पैक्ट नहीं थे और न परमाणु और हाइड्रोजन बमका भय था। फलस्वरूप जिन लोगोंको बुद्धिकी अपचकी बीमारी हो जाती थी, वे लोग जंगलमें भाग जाते थे और तप करने बैठ जाते थे। जब उनकी दाढ़ी और जटा बढ़ जाती थी तब तपके आधारपर उन्हें ऋषि-मुनिकी उपाधि दे दी जाती थी। ऐसे लोग जंगलमें रहते थे। बस्तीमें आनेके लिए दफा १४४ लागू रही, क्योंकि नंगे-अधनंगे रहते थे। शहरमें कभी-कभी नमक-गुड़ माँगने चले आते थे। कन्द-मूलको अपना राशन समझते थे। मठ-मन्दिरके पचड़ेमें नहीं पड़े। अपनी हजामत कभी नहीं बनाते थे और न स्वार्थके लिए दूसरेकी बनाते थे। खाने-पीने और रहनेके मामलेमें अपना 'स्टैण्डर्ड'

कभी गृहस्थोंसे 'हाई' नहीं किया। इसीलिए वे पूज्य रहे, श्रद्धेय रहे। उनमें वरदान देनेकी, शाप देनेकी और भस्म कर देनेकी शक्ति रहती थी।

बौद्ध संन्यासी

ऋषि-मुनियोंकी परम्परा कबतक भारतमें प्रचलित रही, यह आज भी अज्ञात है। इसके बाद अचानक भगवान् बुद्धका नाम आता है। ऋषि-मुनियोंके साधारण संस्करण संन्यासियोंके प्रथम जन्मदाता सिद्धार्थ थे। बौद्ध धर्मकी उत्पत्तिके पूर्व उन्हें कौन जानता? बोधि वृक्षके नीचे जब उन्हें ज्ञानकी उपलब्धि हुई तब वे सीधे बनारस चले आये। वे इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि आज भी बनारसमें अच्छे-अच्छे तपस्वी और धर्माचार्य रहते हैं, जबतक उनसे मान्यता नहीं मिलेगी और बनारसवालों पर रोब गालिब नहीं होगा, तब तक मुझे सफलता नहीं मिलेगी। अगर बनारसवालोंकी उपेक्षा कर गया तो मेरे सम्प्रदायकी 'हत्यात्मक' आलोचना ही नहीं होगी, बल्कि इसे उलट भी दिया जायगा। इस बातको उन्होंने स्वयं आजीवकके सामने स्वीकार किया है।

वाराणसी गमिष्यामि गत्वा वै काशिकां पुरीं।
धर्मचक्र प्रवर्तिष्ये लोकेस्व प्रतिवर्तितम्॥

बनारस आकर वे शहरके बाहर सारनाथमें ही ठहर गये। भीतर जानेकी हिम्मत नहीं हुई। उन दिनों भी सारनाथ शहरका बाहरी अंचल माना जाता था। कौण्डिन्य आदि पाँच भिक्षु वहाँ तप कर रहे थे। सबसे पहले उन्होंने इन पाँचोंको अपना चेला बनाया। महावग्गके अनुसार इस समय समग्र पृथ्वीपर केवल छः धर्मात्मा थे।' इसके बाद वे अन्य लोगोंकी तलाशमें रहने लगे। उन्हीं दिनोंकी बात है कि नगर सेठका पुत्र मानसिक अशान्तिसे परेशान होकर एक दिन सारनाथकी ओर जा रहा था। एकाएक एक पेड़की आड़से भगवान् बुद्ध बाहर निकल आये और उसके

सामने पड़ गये। यश उन्हें देखकर घबरा गया। बुद्धने कहा—'मैं बुद्ध हूँ, तुम आकर बैठो, मैं तुम्हें उपदेश दूँगा।' इसके बाद वे तबतक उसे अपने पास रोके रहे जबतक यशको खोजते हुए उसके मां-बाप नहीं आ गये। उन सबसे जमकर बमचख हुई तब कहीं जाकर वे परास्त हुए। लाचारीमें बेटाके साथ-साथ पूरे परिवारने प्रवज्या ग्रहण कर ली। इस प्रकार बौद्ध धर्मकी पहली पलटन सारनाथमें बन गयी। भगवान् बुद्धके चेलेके चेले और उनके चेलोंने इतना 'उपद्रव-अनाचार' किया कि उसका वर्णन लाखों पृष्ठोंमें लिखा गया। इतिहास इसके लिए बौद्ध धर्मका अहसानमन्द है कि उनके इस कार्योंके कारण तत्कालीन भारतीय समाजकी अवस्थाका पूरा-पूरा चित्रण हुआ है। अगर ये उपद्रव न करते तो संभवतः हमें अतीतका इतिहास ज्ञात न होता।

भारतमें ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण एशियामें बौद्धोंकी अच्छी खासी पलटन तैयार हो गयी। हीनयान-महायानसे तंत्रशास्त्रके ज्ञाताओंकी पलटन बन गयी। चूँकि बौद्ध धर्मका प्रसार और उत्पत्ति सारनाथसे हुई थी, इसलिए अशोकसे लेकर कनिष्कतक तथा उसके बाद पालसेन राजाओंने भी वाहवाही लूटनेकी गरजसे ढेरों स्तूप, हजारों खंभे, सैकड़ों मन्दिर और दर्जनों विहार बनवा दिये, जिसमें बौद्ध संन्यासियोंका स्थायी डेरा जम गया था। इस फजूल खर्चोंकी कठोर आलोचना चीनके तत्कालीन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री (?) फाइयान, वित्तमंत्री (?) ह्वेनच्यांग और एग्रीकल्चर डिपार्टमेण्टके प्रोफेसर (?) इत्सिंग तक कर गये हैं।

महा पण्डित राहुलजीके शब्दोंमें बौद्ध भिक्षुओंका बयान सुन लीजिये—

'बाहरसे भिक्षुके वस्त्र पहने रहनेपर भी भीतरसे वे गुह्य समाजी थे। वज्रयानके विद्वान् प्रतिभाशाली कवि चौरासी सिद्ध विलक्षण प्रकारसे कहा करते थे। कोई पनही या जूता बनाया करता था, उसे पनहीपा कहते थे। कोई कम्बल ओढ़े रहता था, उसे कमरीपा कहते थे। कोई डमरू रखनेसे

डमरूपा कहा जाता था। कोई श्रोखल रखनेमे श्रोखरीपा। ये लोग मदिरामें मस्त, कपाल चपक लिए रहा करते थे। खुल्लमखुल्ला मदिरा और नारियोंका उपयोग करते थे। राजा इन्हें अपनी कन्याएँ प्रदान करते थे। इन पाँच शताब्दियोंमें धीरे धीरे एक प्रकारसे सारी भारतीय जनता इनके चक्करमें पड़कर काम-व्यसनी, मद्यप और मूढ़ विश्वासी बन गयी।'

आचार्य शंकरकी पलटन

भगवान् बुद्धके पश्चात् संन्यासियोंकी सबसे बड़ी पलटनके निर्माता थे—आचार्य शंकर। पता नहीं उन्हें क्या सूझी कि ६५६ ई० में केरलसे लपके हुए काशी चले आये। अपनी थीसिसकी गलती सुधारनेके मूडमें एक दिन घाटपर 'गंजिंग' कर रहे थे कि एक चाण्डालको न जाने क्या सूझी कि उसने आचार्यको ब्रह्मज्ञानका तिकड़म बता दिया। सिर्फ यही नहीं, यहाँ सीख पढ़कर गये, कुमारिल भट्टसे भी इन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया। अगर इन लोगोंको यह ज्ञात होता कि मेरी इस गलतीके कारण बनारस-वालोंकी नींद हराम हो जायगी, भविष्यमें इनके चेलोंसे बचकर रहना पड़ेगा तो शायद वह ऐसी गलती न करते।

बौद्ध धर्मका मजा गृहस्थ लोग देख चुके थे। इसलिए इसबार इस धर्म-को गृहस्थोंने नहीं अपनाया। गृहस्थोंका असहयोग देखकर इस धर्ममें एक कानून यह बनाया गया कि इस धर्मके अनुयायी गृहस्थोंके मध्य जाकर उन्हें प्रवचन देंगे, उनके कान फूकेंगे और वक्त जरूरतपर मूड़ते रहेंगे। इस कानूनसे लाभान्वित होनेके लिए बहुतसे अवसरवादी, बेकार और बे-रोजगार लोग भी इस पार्टीमें भर्ती हो गये। आचार्यकी कृपासे हिन्दुस्तान-के चार कोनेमें चार अड्डे बनाये गये और वहाँसे इस तरह प्रयत्न किये गये कि बौद्ध धर्मका दबदबा घटने लगा।

अपना प्रभाव बढ़ते देख प्रचारकोंने एक नया सुझाव रखा—दाढ़ी-जटाका झंझट हटा दिया जाय। एक तो इसमें चीलर-खटमल अपना महल

बनाते हैं, दूसरे इस बोझसे चेहरेकी रवानी खत्म हो जाती है। इस शर्त-को मान लेनेके बाद एक विवाद उठा और संन्यासियोंका वर्गीकरण किया गया। गिरी, भारती, पुरी, आश्रम, वन, उपवन, अरण्य और सागर आदि नामोंसे दसनामी संन्यासियोंकी पलटनें बनी। इनके कृत्य सम्पूर्ण भारतमें शीघ्र प्रसिद्ध हो गये। इनके बारेमें साधारण जनतामें ये कहावत प्रसिद्ध हो गयी—

नारि मुई सम्पत्ति भई नासी
मूड़ मुड़ाये भये संन्यासी

× × ×

आन क आटा आन क घी
बइठके मजा लें बाबा जी

× × ×

राँड़ - साँड़ सीढ़ी संन्यासी
इनसे बचे तो सेवे कासी

× × ×

छत्तरे भोजन मठे निद्रा।

कहावत है चौबे जी छब्बे बनने गये तो दूबे बनकर लौटे। जनताने बौद्ध भिक्षुओंसे परित्राण पानेके लिए इन्हें अपनाया तो ये ऐसे गले पड़े कि छुड़ाये नहीं छोड़ रहे हैं। आज तो हालत यह है कि जहाँ गृहस्थीमें कुछ कठिनाई हुई, जीवनकी लड़ाईसे भागना चाहा, दो आनेमें बेल घुटवाया, दो पैसेमें धोती रंगकर दो लुंगी बनायी, कहींसे एक खप्पर और कमण्डल जुटाया—'अलख निरंजन' या 'नारायण हरि' की आवाज़ लगाते हुए मधुकरी माँगने लगे। बन बैठे आचार्य आफ हिन्दू धर्म और पहुँचे हुए महात्मा। यकीन मानिये सिर्फ काशीमें नहीं, अयोध्या, प्रयाग, मथुरा,

वृन्दावन, उत्तराखण्ड, नासिक, पुरी, हरिद्वार और उज्जैन आदि क्षेत्रोंमें यही क्रिया होती है। इन पंक्तियोंके लेखकने जो-जो दृश्य देखा है उनका उल्लेख करना साहित्य-धर्मके विरुद्ध होगा, वर्ना उसका उल्लेख कर दिया जाता। शराब पीना, व्यभिचार करना, खून, हत्या और धर्मके नाम पर अच्छे घरोंको बर्बाद कर देनेका उन्होंने व्रत ले रखा है। इतिहास गवाह है कि इनके द्वारा आधुनिक समाज अड़ी भीड़पर कोई भी उपकार नहीं हुआ। अगर ये चाहते तो दंगेके दिनोंमें काम आते, शरणार्थी समस्या सुलझानेके लिए आगे बढ़ते, विदेशी दासतासे मुक्त करानेके लिए सक्रिय बनते, अकाल और बाढ़ पीड़ितोंकी सेवामें अपनेको आगे करते तो आज इनके प्रति शिक्षित समाजमें जो घृणाकी भावना फैल रही है, न फैलती। आजके संन्यासी सही मानेमें उन कामरेड कवियोंके बड़े भाई हैं जो साहित्यमें प्रगतिवादी हैं और जीवनमें 'अवगतिवादी।' आज जब कि राष्ट्रकी आवश्यकता इस बात की है कि अधिक उत्पादन बढ़ायें, देशकी आर्थिक समस्याको ठीक करें और जोर-शोरके साथ उन सभी संकटोंका मुकाबला करें जिसके कारण हमारा मुल्क अन्य देशोंसे पिछड़ा हुआ है, यहाँ ये मुफ्तकी रोटी खा-खाकर जनतामें अवास्तविक धर्मका इंजेक्शन देकर उन्हें और भी बेकार बना दे रहे हैं।

मेरा मतलब यह नहीं कि सम्पूर्ण साधु-समाज दोषी है। आज भी अनेक लोग जनसेवी हैं। जनताकी सेवामें ही उनका जीवन बीत रहा है। उदाहरणके लिए स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द काष्ठजिह्वा स्वामी, तैलंग स्वामी और कीनाराम बाबा आदि महात्माओंने जनता जनार्दनकी जो सेवाएँ की हैं, उनकी कहानी बन गयी है। ऐसे अनेक संन्यासी आज भी जनताकी सेवामें संलग्न हैं जिनका हमें नाम तक नहीं मालूम। लेकिन एक मछली तालाबको गन्दा बना देती है और गेहूँके साथ घुन भी पीसा जाता है। ठीक यही हाल भारतीय संन्यासियोंका है।

भारतको राहत मिले

भारतमें भरतीके इन संन्यासियोंने मठ-मन्दिर और अखाड़े इतने बेशुमार बनाये हैं कि यदि उन्हें किराये पर उठा दिया जाय तो नागरिकोंकी गृह समस्या हल हो जाय। उनसे प्रवचन सुननेकी जगह उन्हें नहर-बाँध अथवा पंचवर्षीय योजनाके अन्य कार्योंमें लगा दिया जाय तो वित्त मन्त्रीकी हर साल टैक्स बढ़ानेकी आदत छूट सकती है। अगर इनसे खेती करवायी जाय तो हमें विदेशोंसे अन्न न मँगाना पड़े। अगर इनसे सेवाकार्य लिया जाय तो भारतीय नागरिकोंका स्वास्थ्य स्तर ऊँचा हो जाय, डाक्टरोंकी लम्बी फीससे राहत मिले। और इन सबके साथ बनारसके सरपर सही-गलत तरीकेसे लगाया जानेवाला कलंकका टीका हमेशाके लिए धुल जाय।

अगर ये लोग चेला बनाकर ही सन्तुष्ट होते तो ठीक था। लेकिन चेलाओंके साथ चेलियोंकी भी अच्छी खासी पलटन तैयार है। इनका जमावड़ा भण्डारेमें देखनेमें आता है। आश्चर्य है कि परिवार नियोजन के इस युगमें संन्यासियोंकी इतनी बड़ी संख्या रहते हुए भी भारतकी जन-संख्या बढ़ती ही जा रही है।

आजका संन्यास धर्म इतना सस्ता हो गया है कि स्कूल-कालेजके बच्चे, जो गरीब हैं और फैन्सी ड्रेस प्रतियोगितामें भाग लेना चाहते हैं, वे अधिकतर संन्यासी बनते हैं।

: बनारसी गुरू :

देशके विभिन्न भागोंमें लोग एक दूसरेको पुकारते समय मिस्टर, मोशाय (महाशय), स्वामी, श्रीमान्, जनाब, हुजूर, सरदारजी और सरकार आदि सम्बोधनों का प्रयोग करते हैं। चूंकि बनारसमें हर प्रान्त के निवासी रहते हैं इसलिए ये सभी सम्बोधन शब्द यदा-कदा सुनाई पड़ते हैं। लेकिन इन सम्बोधनोंके अलावा कुछ विशेष सम्बोधन यहाँ अधिक प्रचलित हैं जो बनारसियोंके लिए परम प्रिय हैं ही—उनके बिलकुल अपने हैं खालिस बनारसी! 'राजा', 'मालिक', 'सरदार', और 'गुरू' ये ऐसे सम्बोधन हैं जो बनारसके सिवाय अन्यत्र सुनाई नहीं देंगे। सच पूछिए तो इन सम्बोधनोंमें जो रस है, वह प्रान्तीयता–जातीयतावादी सम्बोधनोंमें दुर्लभ है। इसके अलावा एक और सम्बोधन है—'का हो!' इस संबोधनका प्रयोग तभी होता है जब आगे जाने वाला व्यक्ति परिचित है या नहीं, यह भ्रम उत्पन्न हो जाय। इस सम्बोधन को सुनते ही प्रत्येक बनारसी एकबार पीछे मुड़कर पुकारनेवालेको देखेगा। परिचित हुआ तो कोई बात नहीं, वर्ना अपनी राह चल देगा। 'राजा' और 'मालिक' सम्बोधन हर वर्गके व्यक्ति अपने समवयस्कोंके लिए प्रयोग करते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनकी 'सभ्यता' से ज़रा घनिष्ठ सम्बन्ध है, उन्हें ऐसे सम्बोधन अरुचिकर और भोंडे लगते हैं। लेकिन सच्चा बनारसी इन सम्बोधनोंपर क़ुर्बान हो जाता है। उसके लिए मिस्टर, जनाबसे कहीं अधिक अपनत्व और रसपूर्ण ये सब सम्बोधन हैं। उदाहरणके लिए 'सरदार' सम्बोधन को ही लीजिए। यह सम्बोधन यहाँके अहीरोंके लिए रिजर्व है। यदि कल्लू अहीरको मिस्टर कल्लूराम या जनाब कल्लूप्रसाद कहें तो एक बारगी आपको सरसे पैर तक इस तरह देखेगा, मानो आपने भारी

बदतमीज़ी की है। उसकी शानमें बट्टा लगा रहे हैं। ठीक इसी प्रकार 'गुरू' सम्बोधन यहाँके ब्राह्मणोंके लिए रिजर्व है। चाहे वह पौसरे पर बैठकर पानी पिलानेवाला हो या पानका दूकानदार, कथावाचक हो या वेदपाठी, सभी 'गुरू' हैं। अगर किसी 'गुरू' को आपने मिस्टर पाण्डेय या, बाबू शुक्ल जी सम्बोधित कर दिया तो उसे लगेगा, जैसे आपने उसे बीच बाज़ार में झापड़ लगा दिया हो। संभव है आपके नमस्कार करने पर आशीर्वाद देना तो दूर रहा, वह रुख भी न मिलाये। लेकिन उसी जगह यदि आप 'पालागी गुरू' कहिए तो वे तुरन्त शहद की तरह मीठे हो जायँगे और महात्मा बुद्धकी भांति मुद्रा बनाकर आशीर्वाद देते कह उठेंगे—"मस्त रहऽ बाट तऽ मजे में ?"

बनारसमें गुरुओंका बहुत बड़ा वर्ग है। हर मेलके, हर टाइपके गुरू यहाँ हैं। इनमें कौन छोटा है, कौन बड़ा है—इसका निर्णय करना कठिन है। कौन कितना महान् है, किसमें कितनी प्रतिभा छिपी हुई है—यह उतना ही गूढ़ विषय है जितना आजकी नयी कवितामें भाव।

गुरू के अनेक रूप

साधारणतः गुरू शब्दसे जो तात्पर्य समझमें आता है उसके कई रूप हैं। आजसे नहीं, मनु महाराजके युगसे गुरू उस व्यक्तिको कहा जाता है जो विद्यादान देता है। प्राचीन कालमें गुरू लोग छात्रोंको विद्यादान देते थे, कुल-पुरोहितका कार्य करते थे और राजकार्यमें सहायता करते थे। जिस प्रकार आजकल गैर-सरकारी संस्थाओंमें क्लर्कोंके जिम्मे काफी काम लदे रहते हैं, उसी प्रकार प्राचीन कालमें गुरुओंके जिम्मे देश-समाजके अनेक कार्य लदे रहते थे। इसीलिए उनका प्रभाव बहुत व्यापक होता था। वे खिजलाकर कभी राजकुमारोंको चपत लगा दिया करते थे। कभी ज्ञान-दण्डसे, कुण्ठित बुद्धि वाले छात्रोंकी बुद्धि को कोंचते थे। पानी भरवाना, खेत जोतवाना, पैर दबवाना और जंगलसे काटकर लकड़ी मंगवाना

तो साधारण बात थी। आजकल विद्यादान करने वाले गुरू जरा कुछ ऊपर उठ गये हैं। अब वे प्रोफेसर और मास्टर साहब हो गये हैं। इसलिए उनका प्रभाव घट गया है, या उन्हें यह सुविधा प्राप्त नहीं है।

कुल-पुरोहित तथा कथावाचकोंका एक अलग दल बन गया है। हवन-यज्ञ तो होते ही नहीं, क्योंकि आजकल भारतीय इतना खाने लगे हैं कि विदेशों से अन्न मंगाना पड़ रहा है। शुद्ध घी तो आँखोंमें लगानेको नहीं मिलता। डालडा तक ढाई रुपयेका सेर भर मिलता है। फिर कौन यज्ञ-हवन करे।

धनुषबाणके युगमें छात्रोंको अश्वत्थ और वट वृक्षके नीचे शिक्षा दी जाती थी। लेकिन एटमके युगमें वह युनिवर्सिटी, कालेज और स्कूलोंमें दी जाने लगी है। ऐसे गुरुओंके बनारसमें दो वर्ग हैं। एक वे जो सरकारी संस्थाओंमें पढ़ाते हैं, दूसरे वे जो अपने घरोंमें मृतभाषा (संस्कृत) पढ़ाते हैं। घरमें पढ़नेवाले छात्र संयमी होते हैं, वे अपने गुरुओंका आदर करते हैं, भले ही वह अभिनय हो। अन्य गुरुओंका खासकर जो प्रश्नपत्रपर नम्बर देते हैं उनकी जान खतरेमें रहती है। इसीलिए आजकल बीमा कम्पनियोंकी गोटी लाल हो रही है। घरपर पढ़नेवाले छात्रोंको सरकारी नौकरी नहीं मिलती, केवल कथा वाचना, विवाह अनुष्ठान आदि करना, तीर्थ-पुरोहित बनकर संकल्प लेना और पोथी-पत्रा देखकर जीवनका भविष्य बताना इनका मुख्य पेशा है।

कलाकार गुरू

गुरुओंका दूसरा वर्ग है जिन्हें कलाकार कहा जाता है। वे अपने चेलोंको हुनर सिखाते हैं। इन्हें गुरू या उस्ताद कहा जाता है। ये गुरू अपने चेलोंको चित्रकला सिखायें या चौर्यकला! दस्तकारी सिखायें या हाथ की सफाई। सभी 'कला' की श्रेणीमें आ जाते हैं। चूँकि ऐसे

गुरुओंमें सभी वर्गके लोग उस्ताद या गुरू बन जाते हैं, इसलिए इन्हें राष्ट्रीय गुरू कहा जाता है।

तीसरे किस्मके गुरू जरा रजिस्टर्ड किस्मके होते हैं, जिनका आम पेशा है—कानमें मंत्र फूँककर चेला-चेलियोंकी फौज तैयार करना। ये गुरु पूर्णिमाके दिन पाद-पूजा करवाकर सालभरका राशन एकत्रित करते हैं। कभी सत्संगके नामपर तो कभी वर्षा-वासके नाम पर चेला-चेलियोंके यहाँ अड्डा जमाकर उन्हें कृतार्थ करते हैं। इनमें कुछ गुरू ऐसे भी हैं जो धर्मशाला, पाठशाला और औषधालयके निर्माणके नाम पर 'टूर' करते रहते हैं।

लेकिन सच पूछिये तो बनारसी गुरू जरा अलग किस्मके होते है। वे इन सब हथकण्डोंसे दूर रहते हैं। उन्हें अपना सम्मान सबसे अधिक प्रिय होता है। आज भी बनारसमें ऐसे गुरुओंकी संख्या कम नहीं है जो दूसरोंके यहाँ भोजन नहीं करते, मृतक भोजमें सम्मिलित नहीं होते और साधारण दान नहीं लेते।

प्राचीन कालमें गुरु और सरदार दोनों ही बनारसकी नाक समझे जाते थे। आनेवाले हर बाहरी संकटोंमें मुकाबला करना ही इनके जीवनका मुख्य ध्येय था। नेतृत्वका सारा भार गुरुओं पर था। उनके एक इशारे पर जानपर खेल जानेवाले अनेक सरदार होते थे। खाली समयमें गुरु लोग छात्रोंको पढ़ानेके बाद अखाड़ोंमें पट्ठोंको तैयार करते थे। उन्हें युद्ध-कौशल सिखाया करते थे। लाठी, गड़ांसा, बल्लम और तलवार आदि अस्त्रोंका चलाना तथा युद्धमें व्यूह रचना सिखाया करते थे। देश-समाजमें अमन-चैन कैसे रखा जाय इसकी नीति बताया करते थे। जो गुरु जितना प्रभावशाली होता था उसके पीछे उतने ही पट्ठे 'सँगरी' लिए चला करते थे। इन्हें सामनेसे आते देख बड़ों-बड़ोंकी धोती ढीली हो जाती थी। लोगोंकी निगाहें गुरूके कदमोंको चूमा करती थीं। अपनी शक्तिपर घमण्ड करनेवाले बड़े-बड़े 'बारहों' भी गुरूके आगे भीगी बिल्ली बन जाते

थे। अर्थलोभ के कारण उन्होंने न तो कभी अन्याय-अत्याचारको प्रोत्साहन दिया और न किसी गरीब-बेकसको सताया। किसीमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह घर या बाहर किसी प्रकारका अनाचार करे। गुरूके एक इशारेपर किसीके धड़से सर अलग हो जाना मामूली बात थी। आज वह युग नहीं रहा। न्याय करने और दण्ड देनेका अधिकार सरकारके हाथोंमें है। फिर भी उस परम्पराको जीवित रखनेके लिए नागपंचमीके दिन अखाड़ोंमें दंगल और होलीके दिन मीरघाटपर धर्मयुद्धका नाटक खेला जाता है। निर्जला एकादशीके दिन उसपार कबड्डीमें कुछ लोग हाथ-पैर तोड़वा आते हैं।

बनारसमें गुरू कहलानेका एकमात्र अधिकार ब्राह्मणोंको है। चाहे वह किसी वर्गका ब्राह्मण क्यों न हो। जिस प्रकार दफ्तरोंमें बड़े बाबू अपने सहकारियोंसे इस बातकी आशा करते हैं कि उन्हें देखते ही लोग एक किनारेसे ही उन्हें नमस्कार करने लगेंगे और कुर्सी छोड़कर खड़े हो जायँगे, ठीक उसी प्रकार बनारसी गुरू भी सभी परिचित यजमानोंसे 'पालागी गुरू' का कांक्षी होता है। यह उनका जातीय हक है। आज भी बनारसमें कई ऐसे गुरू हैं जिनसे गाली सुनने और तिथि तारीख आदि जाननेकी गरजसे कुछ लोग उन्हें नमस्कार करते हैं।

गुरुओं की महत्ता

कौन गुरू कितना महान् है, इसकी साधारण जानकारी आप सिर्फ दो बातोंसे कर सकते हैं। भोजन और भाँग। जो गुरु जितना डटकर भोजन करता है, उसी अनुपातमें वह भाँग छानता है। भोजनके लिए चौचक प्रबन्ध भले ही न हो पर भाँगके लिए जरूर चाहिए। फिर जब गुरू भाँग छान लेते हैं तब इस तरह वे भोजन करने लगते हैं, मानो अब एक हफ्ते तक उन्हें भोजन नहीं करना है।

साधारणतः गुरू लोग सफेद धोती, एक चद्दर और एक लाल गमछा

कन्धेपर डाले बनारसकी गलियोंमें चलते-फिरते दिखाई देते हैं। मस्तकपर चन्दनका तिलक, गलेमें लहराता हुआ यज्ञोपवीत, हाथमें पूजनसामग्री अथवा पोथी-पत्रा लिए रहते हैं। कुछ गुरू लोग 'सेंगरी' (तेल पीकर लाल बनी लाठी) लेकर भी चलते हैं। इनकी चालमें जितनी मजबूती रहती है, उतनी ही मस्ती भी। चप्पल या बूट पहनना वे पसन्द नहीं करते। कपड़े वाला जूता या चमरौधा जिसमें नाल जड़े हों—वे अधिक पसन्द करते हैं। विशाल काया, जिसे देखते ही बच्चे सहम जाते हैं, मटकेकी भाँति तोंद, जो न जाने कितना आसव अरिष्ट और पकवान खाकर फूलती है, भव्य मुखपर छोटी-घनी मूँछें और विजयाके मदमें डूबी लाल आँखें देखते ही लोगोंका माथा श्रद्धासे झुक जाता है, जैसे आती हुई गाड़ीको देखकर सिगनल झुक जाती है। जाड़ा हो या बरसात, पर गुरू लोग कोट-पतलून पहनना पसन्द नहीं करते। नंगे बदन रहना, थोड़ेमें सन्तुष्ट हो जाना उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। याद रखिये यह युग प्रचारका है। विज्ञापनके जरिये आज बहुत-सी वस्तुओंका उपयोग कैसे किया जाता है—हमने सीखा है। ठीक उसी प्रकार पोशाक-आकृति या टीम-टामसे आप बनारसी गुरुओंको पहचाननेमें गलती न कर बैठें। जिस ब्राह्मणको आप कोरा ब्राह्मण समझ रहे हों, मुमकिन है कि वह कई विषयोंका आचार्य हो। इसके विरुद्ध तेजस्वी लगनेवाले ब्राह्मण अंगूठा लगाकर हस्ताक्षर करते हों। यद्यपि ये दोनों प्रकृतिवाले यहाँ गुरू माने जाते हैं और दोनों ही पूज्य हैं, लेकिन यजमानोंमें श्रद्धा अलग-अलग किस्मसे उत्पन्न होती है। जो गुरू जितना महान् होगा वह उतना ही 'अजगर प्रवृत्ति' का होगा। ऐसे गुरू अपनी सारी प्रतिभा अपने साथ लिए चले जाते हैं। इन्हें न तो मौका दिया जाता है और न लोग इनकी विद्वत्ता ही जान पाते हैं। नतीजा यह होता है कि उचित सम्मान न पानेके कारण वे स्वाभिमानी बन जाते हैं और धीरे-धीरे यह स्वाभिमान हटका रूप धारण कर लेता है।

इसके विरुद्ध रंग गाँठनेवाले या महापण्डित लगनेवाले पण्डित समाजमें आदरणीय बने रहते हैं। सच पूछिए तो ऐसे गुरु सिर्फ कमाने-खानेवाले होते हैं। इनकी महत्ता विशेष नहीं होती। लेकिन विद्वान् गुरुओंसे कहीं अधिक इनका रंग रहता है।

विद्वान् पण्डित कभी रंग गाँठनेका प्रयत्न नहीं करता। वह बहुत ही भोला-भाला सीधा-सादा प्रकृतिका होता है।

पंडित समाज

बनारसमें गुरुओंकी एक जमात है जिसे 'पण्डित समाज' कहा जाता है। गुरुओं का असली रूप इस समाजमें देखनेको मिलता है। जब दो गुरु संस्कृतमें झांव-झांव करने लगते हैं तब एक अजीब नजारा देखनेमें आता है, लगता है अब शीघ्र ही मल्ल युद्ध देखनेको मिलेगा। सभापति और अन्य पण्डित मौन मजा लेते रहते हैं। आखिर जब एक पण्डित थक जाता है तब दूसरा उससे वाक्-युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा होता है, फिर प्रत्येक गुरू कछुएकी तरह गर्दन बढ़ाकर इस तरह लड़ने लगता है, मानों भीषण मारपीटकी नौबत आ गयी हो। इस प्रकार बनारसी गुरुओं की गुरुआई प्रकट होती है। इन गुरुओंकी साख सिर्फ बनारसमें ही नहीं, समूचे भारतमें हैं। जिस बातको ये अस्वीकार कर दें, उसकी मान्यता भारतमें हो ही नहीं सकती। भारतके महामान्य राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादने भी इन गुरुओंका सम्मान पैर धोकर किया है।

इन गुरुओंकी जमात बुलाना साधारण बात नहीं। बहुत सोच-समझ कर और आवश्यकताको समझते हुए ये लोग एकत्रित होते हैं। ये सिर्फ देश-समाज व आसन्न संकटका फैसला करनेके लिए एकत्रित होते हैं। इनका फैसला अटल होता है। इनके आनेकी एक लम्बी फीस बुलाने वालोंको चुकानी पड़ती है। आजसे नहीं, बहुत दिनोंसे इनकी एक फीस निश्चित है—इस पर मंहगाई, अलाउन्स या बोनसका रंग नहीं चढ़ा है।

और न डाक्टरोंकी भांति सीनियारटी–जूनियारटीके हिसाबसे इनकी फीस घटती-बढ़ती है। हमेशा एक रेट। जिस वक्त ये लाउड स्पीकरके सामने खड़े होकर भाषण देने लगते हैं, लाउडस्पीकरका दिवाला पिट जाता है। बिना लाउडस्पीकरके ही ये हजार-दो हजार की भीड़में गरजते रहते हैं।

गुरु पूर्णिमाके दिन गुरुओंका बड़ा रंग रहता है। उस दिन बनारसके हर गुरू पूजे जाते हैं।

अत्युक्तिका दोष न दें तो मुझे यह कहनेमें संकोच नहीं कि हर बनारसी अपनेको 'गुरु' समझता है।

: बनारसके कलाकार :

काशी जितनी महान् नगरी है, उतने ही महान् यहाँ के कलाकार हैं। जिस नगरीके बादशाह (शिव) स्वयं नटराज (कलागुरु) हों, उस नगरी में कलाकार और कला पारखियोंकी बहुलता कैसे न हो ? बनारसका लँगड़ा इण्डियामें 'सरनाम' (प्रसिद्ध) है, ठीक उसी प्रकार बनारसका प्रत्येक कलाकार अपने क्षेत्रमें 'सरनाम' है। बनारसमें यदि कलाकारोंकी मर्दुम-शुमारीकी जाय तो हर दस व्यक्ति पीछे कोई न कोई एक संगीतज्ञ, आलोचक, कवि, सम्पादक, कथाकार, मूर्त्तिकार, उपन्यासकार, नाट्यकार और नृत्यकार अवश्य मिलेगा। पत्रकार तो खचियों भरे पड़े हैं। कहनेका मतलब यह कि यहाँका प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई 'कार' है, बेकार भी अपनी मस्तीकी दुनियाका शासक-सरकार है।

काशी ही एक ऐसी नगरी है जहाँ प्रत्येक गली-कूँचेमें कितने महान् और अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कलाकार बिखरे पड़े हैं। सब एकसे एक दिग्गज और विद्वान् हैं। इनका पूर्ण परिचय समाचार पत्रों; मकानोंमें लगे 'नेमप्लेटों' और लेटरपेडपर छपी उपाधियोंसे ज्ञात होता है।

संगीतज्ञ

अब आप ही बताइये भारतको बिसमिल्ला खाँ जैसे अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिका कलाकार किसने दिया ? भारत प्रसिद्ध सितारिया मुश्ताकअलीखाँ को किसने जन्म दिया ? किसी जमानेमें माने जानेवाले 'ठुमरीके बादशाह' जगदीपजीको किसने बढ़ावा दिया ? भारत प्रसिद्ध तबला वादक कण्ठे महाराज (जिनके हाथोंको उस्ताद फैयाज अली खाँने चूम लिया था) जैसे कलाकारको किसने पनपाया ?

बनारसके शिवा-पशुपति अपने जमानेके धुरन्धर गायक रह चुके हैं। यों दोनों सहोदर भाई ध्रुपद अंगके गायक थे। केवल ध्रुपद-धमार ही नहीं, ख्याल और ठप्पा गानेमें भी बेजोड़ रहे। काशीके इन कलाकारोंका व्यापक प्रभाव नेपालसे बंगाल तक पड़ा। बनारस तो 'पूर्वी बाज' का हमेशासे केन्द्र रहा है। काशीके बड़े रामदास और छोटे रामदासकी गणना भारतके उच्च कोटिके गायकोंमें की जाती है। संगीतके हर अंग और हर तालके वे माने हुए विशेषज्ञ हैं। ठुमरीके कलाकारोंमें श्री जगदीपजी और मुईजुदीन खाँ की चर्चा आज भी होती है। रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी देवी और श्रीमती गिरिजा देवी ठुमरी गायिकाओंमें अखिल भारतीय स्थान रखती हैं।

तबलेके 'बनारस बाज' के प्रवर्त्तक रामसहायजी काशीकी ही विभूति रहे। कहा जाता है कि उनकी वादनशैलीसे प्रभावित होकर नवाब वाजिद-अलीशाहने सवालाख रुपया नगद और चार हाथी पुरस्कार स्वरूप भेंट किये थे। वर्तमान तबला वादकोंमें श्रीकण्ठे महाराज, गोदई (शामता प्रसाद) और किशन महाराज प्रमुख हैं। श्री आशु बाबू तबला मर्मज्ञ ही नहीं, बल्कि काशीके सर्व संगीत मर्मज्ञ भी हैं। श्री अनोखे लाल काशीके बेजोड़ कलाकार रहे। अभी हाल ही में उनका स्वर्गवास हो गया है।

सङ्गीत की भाँति कत्थक नृत्यके लिए प्राचीन कालसे ही काशी नगरी एक विशिष्ट केन्द्र मानी गयी है। काशीकी नृत्य शैलीपर लखनऊ घरानेका प्रभाव है। वर्तमान समयमें काशीके परिवारने इस कलाको बहुत प्रोत्साहन दे रखा है। इस परिवारके कलाकारों की ख्याति भारतमें ही नहीं, अपितु देश-विदेशों तक पहुँच गयी है। इस परिवारमें शुकदेव महाराज और उनके पुत्र कृष्ण प्रसाद नृत्यकलाके आचार्य माने जाते हैं। आज भी इस परिवारमें चौबे, सितारा, अलकनन्दा और गोपीकृष्ण जैसे ख्याति प्राप्त कलाकार हैं। काशी निवासी संगीत-नृत्यमें कितनी दिलचस्पी लेते हैं,

यह सिर्फ इसीसे जाना जा सकता है कि यहाँ 'संगीत-समाज' और 'संगीत परिषद्' जैसी संस्थाएँ भारतके सभी ख्याति प्राप्त कलाकारोंकी कलाओंका प्रदर्शन नागरिकोंके सम्मुख यदा-कदा उपस्थित करती हैं।

अब तो हालत यह है कि स्टुडियोमें फिल्म बनते हैं और काशीके दूधमुँहे बच्चे भी 'तन डोले—मन डोले' आदि विभिन्न फिल्मोंके गीत गली-कूँचेमें गाते फिरते हैं।

चित्रकार

काशीमें कुछ स्थान दर्शनीय हैं और कुछ व्यक्ति भी। यदि इन व्यक्तियोंका दर्शन न किया गया तो काशी-दर्शनका पुण्य तो दूर रहा—बनारसको समझनेमें भी कठिनाई होती है। काशीके दर्शनीय व्यक्तियोंमें श्रीकेदार शर्मा ऐसे ही एक हैं। लोग अपना परिचय और उपाधि लेटर-पैडपर छपवाते हैं अथवा दरवाजेपर 'नेमप्लेट' के साथ फिट कर देते हैं। शर्माजीका निराला साइनबोर्ड देखकर बिना सींग-पूँछवाले भड़क जाते हैं, क्या शर्माजीने अपना निजी चित्र बाहर टाँग रखा है? क्या ऐसी ही उनकी शक्ल है? सच पूछिए तो यह एक हँसमुख और निराली काशीके निराले चित्रकारका डाक बँगला है—इस बातका यह प्रगतिशील विज्ञापन है। केदारजी सही मानेमें खाँटी बनारसी हैं और यही वजह है कि उनकी कलमसे असली बनारसी जीवनकी झलक अंकित होती है।

शर्माजीके शिष्योंमें स्वर्गीय श्रीरमाकान्त कण्ठाले, श्रीकेशव दुवाड़ी, कार्टूनिस्ट वीरेश्वर और बैजनाथ आदि हैं।

काशीमें लखनऊ स्कूलके कलाकारोंमें श्री एम० एन० चड्ढा, अम्बिका प्रसाद दुबे और इनके शिष्य कर्णमान सिंह तथा दर्शनजी उल्लेखनीय हैं। श्री चड्ढा काशीके असाधारण कलाकार हैं।

श्री मनोरञ्जन कान्जिलाल काशीके श्रेष्ठ चित्रकारोंमें हैं। आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। इधर आपकी ख्याति कार्टूनोंके सम्बन्धमें विदेशोंमें पहुँच-पैठ करने लगी हैं।

टैगोर शैलीके कलाकारोंमें शारदा उकील और रणदा उकीलको नहीं भुलाया जा सकता। श्रीनन्दलाल वसुके दो शिष्य श्रीशान्तिवसु और मन्मथदास काशीके श्रेष्ठ कलाकारोंमें हैं।

काशी शैलीके प्रवर्त्तकोंमें श्रीरामचन्द्र शुक्ल तथा महेन्द्रनाथ सिंह उल्लेखनीय हैं। शुक्लजी चित्रकारसे अधिक चित्रकलाके पारखी और लेखक हैं।

काशीके उभरते हुए कलाकारोंमें श्रीगोपेश्वर, मधुर, शिवराज, इब्राहिम 'भारती' विभूति और विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी आदि प्रमुख हैं।

मूर्तिकार

बंगाल और मथुराके बाद उत्तर भारतमें काशीकी मूर्त्तिकला अधिक लोकप्रिय है। यों काशीके कुछ मेलोंमें काशीकी लोककलाओंके दर्शन होते हैं, परन्तु काशीके कुम्हार जाति लोग इस कलाके प्रमुख कलाकार हैं। इनकी भित्ति चित्रकला भी काशीकी लोक कलामें प्रमुख स्थान रखती है।

काशीके मूर्तिकारोंमें महादेवप्रसाद, गिरिजाप्रसाद, पशुपति मुखर्जी और पाँचू गोपाल प्रमुख हैं।

साहित्यकार

काशीकी मिट्टीका ऐसा प्रभाव है कि राज्यपाल (अब्दुर्रहीम खान-खाना) से लेकर गो-पाल (महान् जन कवि बिहारी) तक यहाँ आकर मुखरित हो उठे। डाकू, महामुनि, महापण्डित, वैरागी, जुलाहा, मोची, और रईस सभी वर्गोंके लोग काशीकी मिट्टीमें पलकर साहित्यिक बन

गये। अगर आपको इन बातोंपर एतबार न हो तो तवारीख उलटकर देख सकते हैं।

धार्मिक क्षेत्र होनेके कारण काशीमें हजारों यात्री धनकी गठरी लिये पुण्यकी गठरी लूटने चले आते थे। इस बातका पता वाल्मीकिजीको लग चुका था। वे यहाँके जंगलोंमें उन गठरियोंको खाली करते रहे। पता नहीं, नारदजीको क्या सूझा कि उन्होंने ऐसे तिकड़ममें उन्हें उलझाया कि वे पेशा छोड़ बैठे। हाँ, हमेशाके लिए अमर जरूर हो गये। 'उल्टा नाम जपा जग जाना, वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।'

बनारसवाले विद्वानोंका हमेशासे उचित सम्मान करते आये हैं, लेकिन रंग गाँठनेवालोंको गर्दनियाँ देनेसे बाज नहीं आते। आज भी यही स्थिति है, यही वजह है कि प्रतिभावान कलाकार यहाँ आकर यहाँके बन जाते हैं।

वेदव्यासको घमण्ड था कि उन्होंने शंकरके पुत्रसे क्लर्की करवायी है, इसलिए वे भी महान् हैं। बनारसवालोंसे उनका 'रंग गाँठना' देखा नहीं गया। नतीजा यह हुआ कि उन्हें गंगा उसपार जंगलमें छोड़ आये, जहाँ मरनेपर शीतलावाहन होना पड़ता है। यकीन न हो तो शीतला मन्दिरसे सीधे उसपार जाकर उनसे भेंट कर सकते हैं।

जहाँका चाण्डाल शंकराचार्य जैसे महात्माको ब्रह्मज्ञान दे सकता है, वहाँके ऊँचे कलाकार कितने महान् होंगे, इसका अनुमान आप स्वयं कर सकते हैं। कहा जाता है, महामुनि पतञ्जलि जब बनारस आये थे, तब यहाँके गुरुओंने उन्हें इतनी गहरी बूटी दे दी कि उन्होंने तुरत नागकूपपर बैठे-बैठे व्याकरण महाभाष्य लिख डाला। बनारसमें लोग मुक्ति पानेकी गरजसे मरनेके लिए आते थे, साथमें अजीबो-गरीब बीमारियाँ लाते थे। इन बीमारोंको देखकर महाराज दिवोदास (जिन्हें धन्वन्तरि भी कहा गया है) का दिल 'टेघर' (पिघल) गया और उन्होंने जड़ी-बूटियों वाली पोथी (आयुर्वेद) लिख डाली।

गोस्वामी तुलसीदास अयोध्यामें बैठे-बैठे रामायण लिख रहे थे। अचानक उनका मूड बिगड़ा और फिर नहीं जमा। कहा तो यहाँ तक जाता है कि अयोध्यामें रहकर भी अयोध्याकाण्ड वे नहीं लिख सके। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अयोध्या काण्डका प्रथम श्लोक है। शंकर के दरबारमें रहकर पहले उनकी बन्दना न कर रामायणकी गाड़ी आगे बढ़ाना उनके लिए संभव नहीं था। बाबाका माल खाकर नानीका घर आबाद रहे, कैसे कहते? आज तो हालत यह है कि कितने प्रकाशक, टीकाकार और कथावाचक उनके नाम पर नून-रोटी खा रहे हैं। संसारमें बाइबिलके बाद सबसे अधिक विक्रय वाली पुस्तक रामायण मानी गयी है। तुलसीदास जी आज अगर जीवित होते तो उन्हें भारतरत्नकी उपाधि, लेनिन शान्ति पुरस्कार और नोबुल पुरस्कार तो मिलता ही, साथ ही रायल्टीकी कितनी रकम मिलती और उसपर उन्हें कितना इनकम टैक्स देना पड़ता—राम जाने।

कबीरदास जी पैदा हुए हिन्दूके औरससे और पले मुसलमानके घर। वे सचमुच हिन्दू रहे या मुसलमान, इसका निर्णय उनके जीवनकालमें नहीं हो सका। फलस्वरूप इन दोनों सम्प्रदायवालोंको उल्टी-सीधी वाणीमें गाली देते रहे। वही गालियाँ हिन्दी साहित्यमें रहस्यवादी कविता बन गयी। कहनेका मतलब जो चीज समझमें न आये वह रहस्यवादी है। इनकी कवितासे प्रेरणा लेकर रवीन्द्रनाथ कविगुरु और महादेवी वर्मा सर्वश्रेष्ठ कवियित्री बन गयीं।

रैदास जी सड़कके किसी पटरी पर बैठे टूटे चप्पल सीते रहे और मन की मौजमें कुछ गुनगुनाते रहे। आखिर बनारसी पानीका असर उनपर क्यों न होता। उनका गुनगुनाना बनारस वालोंके निकट 'भक्त रैदासकी वाणी' बन गयीं।

राजनीतिमें चर्चिलका, साम्यवादमें लेनिनका, विज्ञानमें आइनस्टीनका, दालमें हींगका और चूरमामें चीनीका जितना महत्व है, उतना ही वर्तमान

हिन्दीमें भारतेन्दुजीका। काशीको इस बातपर गर्व है कि उसने आधुनिक हिन्दीके जन्मदाताको अपने यहाँ जन्म दिया जो किसी बादशाहसे कम नहीं था। जिसकी देनको हिन्दी जगत् तबतक याद रखेगा जबतक एक भी हिन्दी भाषा-भाषी मौजूद रहेगा।

भारतेन्दुजीके समकालीन साहित्यिकोंमें बाबा दीनदयाल गिरि, काष्ठ जिह्वा स्वामी, सरदार कवि, लच्छीराम कवि, पं० दुर्गादत्त, हनुमान्, सेवक, पं० ईश्वरदत्त, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द', चैतन्यदेव, रामकृष्ण बर्मा, कार्त्तिक प्रसाद खत्री, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, प्रतापनारायण मिश्र और बाबू राधाकृष्ण आदि थे।

इसके बाद तो काशी हिन्दी साहित्यका गढ़ हो गया। गद्य साहित्यके लेखकोंमें किशोरीलाल गोस्वामी, रामदास गौड़, बाबू श्यामसुन्दरदास और पं० रामनारायण मिश्रकी सेवाएं अमूल्य हैं।

लाखों अहिन्दी भाषा—भाषियोंको हिन्दी सीखनेके लिए पेनिसिलिन का इंजेक्शन देनेवाले बाबू देवकीनन्दन खत्री काशीकी ही विभूति रहे। काशीका लमही ग्राम उस दिनसे अमर हो गया जिस दिन यहाँ उपन्यास सम्राट प्रेमचन्दजीने जन्म लिया।

ब्रजभाषाके अन्तिम कवि जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर और छायावादके प्रवर्त्तक प्रसादजी काशीकी गलियोंमें आँख मिचौनी खेलते रहे। हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम कहानी 'उसने कहा था' काशीकी ही देन है।

मेरी नजरोंमें हिन्दीमें तीन सर्वश्रेष्ठ कथाकार हैं। स्वर्गीय बलदेव प्रसाद मिश्र, द्विजेन्द्र प्रसाद मिश्र 'निर्गुण' और राधाकृष्ण। इनमें प्रथम दोनों काशीकी ही विभूति हैं। यों तो काशीमें कथाकारोंका पूरा स्टाक भरा है, उनमें कौन कितना महान् है, यह बताना मुश्किल है। उनकी महानता का पता उनकी रचनाओंमें नहीं लगता, बल्कि चाय चुस्कियाँ लेते हुए जब वे अपने बारेमें बताना शुरू करते हैं तब श्रोताओंको उनकी महानता

ज्ञात होती है। सभी अपनेको गोर्की, चेखव, मोंपासा, लारेन्स, कुप्रिन, माम, हेनरी और प्रेमचन्द समझते हैं। कुछ लोग तो ठोक पीटकर गदहों-को घोड़ा बनाते हैं, यानी अनाड़ियोंको लेखक बना देते हैं। इधर नये लेखक भी ऐसे बेरहम हैं कि जहाँ उनकी रचना कहीं छपी बस वे अपने-को गुरू समझने लगे। कहनेका मतलब—

> अक्षौहिणियाँ स्रष्टाओंकी, चेले कम उस्ताद बहुत हैं।
> तिकड़मके बलपर बन जाने वाले कपिल कणाद बहुत हैं॥
> ग्रन्थोंकी संख्या विशाल है सर्जन कम, उन्माद बहुत हैं।
> है स्वतन्त्रता, भाई साहब! देने वाले दाद बहुत हैं॥

काशीके वर्तमान कथाकारोंमें वयोवृद्ध श्रीविनोदशंकर व्यास, रुद्र काशिकेय, मोहनलाल गुप्त, शिवप्रसादसिंह, हरिमोहन, कमला त्रिवेणी शंकर, राजकुमार, गिरिजाशंकर पाण्डेय, हरीश और उदीयमान कंचन-कुमार आदि हिन्दी साहित्यका भण्डार भरते जा रहे हैं।

एक विशेष शैलीके कथाकारोंमें श्री कामताप्रसाद कुशवाहा कान्त अपने पाठकोंके निकट सर्वाधिक लोकप्रिय रहे। कान्तशैलीके लेखकोंमें काशीके प्रमुख उपन्यासकार श्री ज्वालाप्रसाद गुप्त 'केशर', गोविन्दसिंह और ब्रह्मदेव 'मधुर' उल्लेखनीय हैं। अपनी रचनाओंके द्वारा अल्पकालमें इन लोगोंने जितने पाठक बनाये, वह किसी भी लेखकके लिए गर्वका विषय हो सकता है। श्रीकेशरकी गणना इन दिनों काशीके प्रमुख उप-न्यासकारोंमें की जा रही है।

हिन्दी आलोचनाके जनक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डाक्टर श्याम सुन्दरदास, आचार्य केशवप्रसाद मिश्र और लाला भगवान 'दीन' जो स्थान बना चुके हैं, उसे स्पर्श कर पाना आज भी मुहाल हो उठा है। आधुनिक समालोचकोंमें स्वर्गीय चन्द्रबली पाण्डेय, डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डाक्टर रामअवध द्विवेदी, डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद शर्मा और शान्तिप्रिय द्विवेदी अपने विषयके महारथी हैं।

तरुण आलोचकोंमें सर्वश्री महेन्द्रचन्द्र राय, त्रिलोचन शास्त्री, चन्द्रबली सिंह, नामवर सिंह, विजयशंकर मल्ल और बच्चन सिंह प्रमुख हैं। श्री महेन्द्रजी मार्क्सवादी आलोचकोंमें ऊँचा स्थान रखते हैं, आप लिखते बहुत कम हैं, लेकिन जो लिखते हैं, वह बिलकुल ठोस। हिन्दी और बँगलामें आप समान गतिमें लिखते हैं। शास्त्री लिखते कम हैं, भाषणके रूपमें प्रसारित अधिक करते हैं। चन्द्रबली सिंहजी बड़े संगदिल आलोचक हैं, कुछ लोग इन्हें 'जानमारु' आलोचक कहते हैं। उभरते हुए आलोचकोंमें नामवर सिंह प्रगतिपर हैं। वह दिन दूर नहीं है जब काशीके ये आलोचक हिन्दी साहित्यमें मूर्धन्य स्थान प्राप्त कर लेंगे।

इतिहास, दर्शन, धर्म और संस्कृतिके विद्वानोंमें महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज, डाक्टर भगवानदास; डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, महामहोपाध्याय पं० नारायण शास्त्री खिस्ते, पं० दामोदर गोस्वामी, डाक्टर सम्पूर्णानन्द, पं० गंगाशंकर मिश्र, डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, डाक्टर मोतीचन्द, डाक्टर राजबली पाण्डेय और रायकृष्णदासकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

मूल लिपिमें बौद्ध साहित्यके विश्वमें एकमात्र अन्वेषक आचार्य नरेन्द्रदेव और प्रसिद्ध समाजशास्त्री तथा विचारक राजाराम शास्त्रीकी सेवाओंसे हिन्दी साहित्य गौरवान्वित हुआ है। प्रसिद्ध कोषकार बाबू रामचन्द्र वर्मा, मुंशी कालिका प्रसाद और मुकुन्दीलालजी काशीकी ही विभूति हैं।

हिन्दी हास्य साहित्यके स्तम्भ

हिन्दीमें हास्य साहित्यके लेखकोंकी अगर मर्दुमशुमारीकी जाय तो नब्बे परसेण्ट बनारसी ही मिलेंगे। हास्य व्यंग्यकी जान बाबू अन्नपूर्णानन्द वर्मा का नाम बँगलाके परशुराम, उर्दूके चगताई-थानवी, मराठीके पी० के० अत्रे और गुजरातीके ज्योतीन्द्र दबेके नामके साथ लिया जा सकता है।

बेढब बनारसीकी मुहावरेदार भाषा आजके नवीन हास्य लेखकोंको बराबर प्रेरणा दे रही है, बेढबजी सिर्फ हास्य साहित्यमें ही 'मास्टर साहब' नहीं हैं, बल्कि गंभीर साहित्यमें आपका अध्ययन और देन भी विशिष्ट है। बेढबजीकी तुलना उर्दूके किसी भी हास्य लेखकसे की जा सकती है। सही मानेमें वे आज हिन्दीके हास्य लेखकोंके लिए 'मास्टर साहब' बने हुए हैं। चोंचजीके शब्दोंमें आप हिन्दीके अकबर नहीं, हुमायूँ हैं।

भाषा और शैलीके अप्रतिम कलाकार उग्रजीकी करारी चोटसे आज भी बहुतसे धुरन्धर तिलमिला उठते हैं। उग्रजीके नामपर आजके कुछ प्रगतिवादी नाक-भौं सिकोड़ते हैं, पर उन्हें उग्रजीके शब्दोंमें दिया गया बयान याद रखना चाहिए—

न जानूँ नेक हूँ, या बद हूँ, पर सोहबत मुख़ालिफ है।
जो गुल हूँ तो गुलखनमें, जो खस हूँ तो हूँ गुलशनमें॥

बेधड़क बनारसी वह हस्ती हैं जिसने हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमें युगान्तरकारी कार्य किया है। द्वितीय महायुद्धके समय हिन्दीके दैनिक अखबार रविवार विशेषाङ्क प्रकाशित नहीं करते थे। इस दिशामें सर्व प्रथम प्रयास उन्होंने किया और आज सभी पत्र अपना रविवार विशेषाङ्क निकालकर न जाने कितने लेखकोंकी सृष्टि कर रहे हैं। उखड़ते हुए कवि सम्मेलनोंको जमाना आपके बायें हाथका खेल है।

भैया जी बनारसी 'दादा' के रूपमें उतने ही ख्याति प्राप्त हैं जितना अरबी न फारसी [दैनिक आजका एक विशिष्ट कालम] के लिए। आपकी हास्य कहानियाँ हमें उर्दूके प्रसिद्ध लेखक कन्हैयालाल कपूर और कैप्टन शफीकुर्रहमान की याद दिलाती रहती हैं।

रुद्र काशिकेयके नामसे गंभीर और गुरु बनारसीके नामसे हास्यरस की गंगा बहानेवाले पं० शिवप्रसाद मिश्र काशीके दर्शनीय व्यक्तियोंमें हैं। नीलकण्ठकी तरह आप कई भाषाओंके रसको आकण्ठ पान कर चुके

हैं जिसका परिचय यदा-कदा उनकी लेखनीसे मिलता रहता है। 'बहती गंगा' आपकी अमर कृति है। बनारसी जीवनपर बनारसी भाषामें जो चीज निकलती है, वह साहित्यमें 'माइल स्टोन' का काम करती है।

स्वर्गीय बलदेवप्रसाद मिश्रका नाम लेते ही हृदयमें एक टीस-सी उत्पन्न होती है। काश! हिन्दी साहित्यके कर्णधार इनकी कीमत आँक पाते। हास्य ही नहीं, साहित्यके सभी अंगोंपर समान अधिकार रखनेवाले इस महान् कलाकारका मूल्याङ्कन आज भी हिन्दी जगत् नहीं कर सका है। मिश्रजी जैसे प्रतिभाशाली कलाकार बहुत दिनों बाद हिन्दी साहित्यमें पैदा होते हैं।

कौतुकजी 'शिवजी' के नामसे प्रगतिशील बनकर आजकल ज्योतिषाचार्य बन गये हैं। अच्छा हुआ कि आपने अपना चोला बदल लिया वर्ना साहित्यमें भुखमरीके अलावा कुछ नहीं मिलता। आपके 'छींटों' का मुकाबला आजके बड़े-बड़े महारथी भी नहीं कर पाते।

चोंचजी जबसे 'राजहंस' बने पाठकोंमें उदासी छा गयी थी। अब वे पुनः कमर कसकर मैदानमें उतर आये हैं। नया जोश, नयी जवानी और नया रंग देखकर बड़े-बड़े अखाड़िया और 'यार' लोग आजकल बिदकने लगे हैं।

हिन्दी संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान्, नाट्य, साहित्यके आचार्य और प्रसिद्ध भाषाशास्त्री पं० सीताराम चतुर्वेदी हास्य लिखते कम हैं, पर जो लिखते हैं, बिलकुल 'कटारी मार।'

अशोकजी जबतक बनारसी रहे, तबतक उनकी कलमसे बनारसी मस्ती बहती रही। आजकल वे सरकारी अधिकारी हो गये हैं।

डाक्टर भानुशङ्कर मेहताके हास्यमें उनकी अपनी मौलिकता है। कुछ पत्रकारोंको उनके हास्यमें पैथालाजिस्टकी 'बू' मालूम पड़ती है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि ये जो हास्य देते हैं—वह पूर्ण मौलिक और नयी सूझमें ढला होता है।

बनारसके नवोदित हास्य लेखक हीरालाल चौबे को लोग अभी 'बतिया' समझते हैं पर एक दिन वे पूर्ण कूष्माण्ड बन जायँगे—इसमें सन्देह नहीं।

बनारसके 'गहरेबाज' की 'गहरेबाजी' केवल बनारसमें ही नहीं, पूर्वी उत्तरप्रदेशमें सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। श्री पुरुषोत्तम दबे ऋषिजीकी 'खैरात' को भी नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। स्वर्गीय इन्द्रशंकर मिश्र, झपसटराय बनारसी, पं० केदार शर्मा और बेलटक बनारसी काशीके हास्य लेखकोंमें अपना स्थान रखते हैं।

साहित्यके आधार

निराला साहित्यके मर्मज्ञ अपनी वर्चस्वी प्रतिभाके धनी त्रिलोचन शास्त्री आलोचककी अपेक्षा कवि रूपमें अधिक तगड़े हैं। त्रिलोचन शास्त्री उर्दूकी रवानगीके बहुत कायल हैं।

'समयकी शिलापर मधुर चित्र कितने...' के यशस्वी गायक डाक्टर शंभूनाथ सिंहका काशीके कवियोंमें जो स्थान है, उससे सभी परिचित हैं। काशीको अपने इस गायक कविपर नाज है।

बड़े बूढ़ोंमें श्री अटलजी, अवस्थीजी और श्रीमाली अधिक शक्ति सम्पन्न हैं। तरुण कवियोंमें श्री ठाकुरप्रसाद सिंह, केदारनाथ सिंह, ब्रजविलास और रवीन्द्र 'भ्रमर' हिन्दी साहित्यमें अपना स्थान ग्रहण कर चुके हैं। श्री रत्नशंकर, प्रदीप जी, लालजी सिंह, कैस बनारसी, नजीर, राहगीर, चन्द्रशेखर, महेन्द्र राजा, प्रवासीजी, विष्णुचन्द्र शर्मा और श्रीशंकर शुक्ल आदि हिन्दी कविताको निरन्तर प्रवाहमान रखते आ रहे हैं।

हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमें 'बनारस अखबार' से 'बनारस' तक अनेक महान् पत्रकार हो चुके हैं। पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर, पं० लक्ष्मण

नारायण गर्दे, बाबू सम्पूर्णानन्द, पं० गंगाशंकर मिश्र, श्री श्रीप्रकाश, पं० कमलापति त्रिपाठी और खाडिलकरकी सेवाएं अविस्मरणीय रहेंगी।

काशीमें इतिहास, राजनीति, मनोविज्ञान, प्राणीशास्त्र, गणित और भूगर्भ शास्त्रके अनेक विद्वान् हैं और उनकी रचनाओंसे हिन्दी साहित्यका भण्डार निरन्तर भरता जा रहा है। इनमें सर्वश्री भिक्षु धर्मरक्षित, डाक्टर गणेशप्रसाद उनियाल, डाक्टर भोलाशंकर व्यास, डाक्टर श्रीकृष्ण लाल, डाक्टर सितकण्ठ मिश्र, कन्हैयालाल वर्मा, पं० करुणापति त्रिपाठी, लालजीराम शुक्ल, प्रोफेसर बी० एल० सहानी, ब्रजरत्नदास, सुधाकर पाण्डेय, पं० लक्ष्मीशंकर व्यास, विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, शारदा शंकर द्विवेदी, गंगानाथ झा, शिवनाथ एम० ए० (आजकल शान्ति निकेतनमें हैं] पारसनाथ सिंह, माधवप्रसाद मिश्र, कमलाप्रसाद अवस्थी, पद्मा अग्रवाल, विनोद जी, चन्द्रकुमार जी, डाक्टर राय गोविन्दचन्द और पद्मावती 'शबनम' आदिका नाम आदरसे लिया जाता है।

स्पेशल नोट—प्रस्तुत लेखमें मैंने भरसक काशीके सभी विद्वानोंका, अपने इष्ट-मित्रोंका, यहाँ तक कि जितने नाम मिल सकें उन सभीका उल्लेख किया है। बाहरसे आये साहित्यिकोंका जो यहाँ कुछ दिन रहे और चले गये उनकी चर्चा नहीं की है। फिर भी जो लोग छूट गये हों, उनसे नम्र निवेदन है कि वे नाराज न हों। जिनका नाम मस्तिष्कमें नहीं आया, वे लोग मेरे अवचेतनमें जरूर हैं। अगले संस्करणमें उनकी चर्चा अवश्य कर दूंगा और इस 'स्पेशल नोट'को 'डी लिट' कर दूंगा।

: बनारसके अहीर :

जनसंख्याकी दृष्टिसे काशीमें ब्राह्मणोंके बाद अहीरोंकी संख्या अन्य जातियोंसे अधिक है। शायद ही ऐसा कोई महल्ला होगा जहाँ अहीर न रहते हों। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक बनारसी निखालिस दूधका प्रेमी होता है। घरपर 'पहुँचउवा' अथवा बाजारमें बिकनेवाले दूधपर उसे विश्वास नहीं है। भले ही वह खालिस क्यों न हो। खालिस दूध प्राप्त करनेके लिए लोग तरह-तरहके प्रयोग करते हैं। रईस और अफसर अथवा जिनका रोब अहीरोंपर गालिब होता है, वे अपने दरवाजेके सामने खड़े होकर दूध दुहवाते हैं। ऐसे लोग एक गाय या एक भैंसका पूरा दूध क्रय कर लेते हैं। मध्यम श्रेणीवालोंको जरा रियाज़ करना पड़ता है अर्थात् तड़के या शामके समय जब अहीर थका-मांदा नींदमें सोया रहता है तब अनेक बनारसी लोटा-बाल्टी लेकर उसके डाक बंगलेपर हमला कर बैठते हैं। कहनेका मतलब ग्राहकोंकी भीड़से अहीरोंकी नींद खुलती है। इधर ग्राहकोंका विश्वास है जब वह सोया रहे तभी दूध लेने पहुँचना चाहिए वर्ना घपला कर बैठेगा।

दूध दुहनेके पहले खाली बाल्टी देखना, ग्वालेकी प्रत्येक अदाको तजबीजना, पहलेसे किसी और बाल्टीमें दूध दुहकर रखा है कि नहीं, यह देखना और दूध लेते समय फेना हटाकर दूध लेना—यह सब ग्राहकोंके अपने 'ट्रिक' हैं। इतना करनेपर भी लोग इन्हें अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। यही एक ऐसा रोजगारी है जो जनताका अविश्वासका सेहरा पहने सड़कोंपर झूमता हुआ चलता है। अपने इस अपमानसे नाराज़ नहीं होता। शायद सहनशीलताका गुण उसे भगवान् शंकरसे प्राप्त हुआ है।

अब ऐसी हालतमें यदि ग्वालेका मकान घरसे दूर हुआ तो खालिस दूध मिलना दूर रहा—वहाँ तक जानेमें लोग परेशानी अनुभव करते हैं। समयसे दफ्तर या दूकान नहीं जा सकेंगे। इसीलिए प्रत्येक बनारसी चाहता है कि दफ्तर, दूकान, बाजार और नदी तट भले ही दूर हो, पर ग्वालेका मकान पास हो ताकि उसके यहाँ हमला करनेमें सहूलियत हो। ग्वालेका घर पासमें रहनेसे तीन फ़ायदे हैं। पहला यह कि खालिस दूध मिल जाता है, दूसरे 'खतम हो गयल' सुनना नहीं पड़ता—तीसरे सुबहका टहलना भी हो जाता है। अब उनकी बात ही अलग है जो सुबह शाम ग्वालेके यहाँ हाजिरी बजाना अपनी शानके खिलाफ समझते हैं। ऐसे लोगोंके यहाँ 'घर पहुँचउवा' दूध देनेकी व्यवस्था है।

इतना 'रियाज' करनेपर भी बनारसी लोग कभी-कभी यह अनुभव करते हैं कि आज 'पनिहर' दूध मिला है। आज भी कुछ ऐसे बनारसी हैं जो दूधका कटोरा मुँहमें लगाते ही बता देते हैं कि इसमें कितने प्रतिशत दूध है और कितना पानी। एक तो दूधसे मक्खन मलाई निकालकर सारा तत्व खींच लेते हैं, फिर उसमें भी पानी मिलाकर देंगे। सुना है, इस दूधमें भी जब कुछ विटामिन रह जाता है तब मशीनके जरिए उसे भी निकाल लेते हैं ताकि जनताका स्वास्थ्य खराब न हो जाय।

बनारसके निवासियोंको असली दूध प्राप्त हो, इस उद्देश्यसे प्रेरित होकर एकबार बनारस नगरपालिकाने रबड़ी-मलाईपर कण्ट्रोल लगा दिया था ताकि यह सामान न बननेपर लोगोंको विटामिन युक्त असली दूध प्राप्त होगा। यद्यपि उस समय कुछ भाई लोगोंने जो रातको मलाई-रबड़ीसे रोटी खाते हैं—आपत्ति की थी। लेकिन इधर असली दूध पीते ही लोगोंमें अपचकी शिकायत इतनी गहरी हुई कि इस कानूनको बदल देना पड़ा।

खालिस दूध प्राप्त करनेके लिए बनारसी लोग अपना 'तिकड़म' करते रहते हैं, पर उनकी 'तिकड़म' काम नहीं देती। पता नहीं, नटवर श्यामके

ये जाति बिरादर कब घपला कर बैठते हैं। यदि स्काटलैण्डयार्ड वाले इस बातकी खोज करें तो इस रहस्यपर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं। यद्यपि आजका जमाना ही घपलेबाजीका है। सोना-चाँदीमें, घीमें, साहित्यमें, राजनीतिमें यहाँ तक कि अच्छी लड़की दिखाकर काली कलूटी लड़कीको कन्यादानमें देकर ससुर लोग घपला कर बैठते हैं—फिर दूधमें घपलेबाजी करना कोई भारी जुर्म नहीं, जबकि आप सामने खड़े होकर दूध दुहवाते हैं—सिर्फ इसीलिए न कि आपका उनपर विश्वास नहीं।

इधर ग्वालबन्धु मस्त रहते हैं। कोई कितना ही अविश्वास क्यों न करे—वे साफ काम करना पसन्द करते हैं। वे आपके सामने दूध दुहने को तैयार हैं, आपके दरवाजेपर गाय ले जाकर दूध दुह सकते हैं। आपके घर पहुँचाते भी हैं। वे हर तरहसे ग्राहकको खुश रखना चाहते हैं, पर ग्राहक न जाने क्यों उनका विश्वास नहीं करते जब कि खोपड़ीपर सवार होकर दूध दुहवायेंगे। लोग यह नहीं सोचते कि सबको दूध देना पड़ता पड़ता है, अगर किसीको न दें तो उनका मुँह फूल जाता है, बकाया पैसा पानीमें चला जाता है। अगर सबको खुश न रखे तो गणतन्त्रकी परम्परा ही बिगड़ जाय। ग्राहकोंको तो शिकायत करनेकी आदत ही पड़ गयी है। हजार खालिस दो, पर विश्वास नहीं करते। महीने भर दूध पिलाओ और पैसा देते समय नानी मर जाती है। आज तनख्वाह नहीं मिला—लो आज कुछ रुपये ले जाओ—अगले महीनेमें इकट्ठे दे देंगे—आदि बहाना सुनाते हैं। वे यह नहीं समझते कि आज़ादी सिर्फ उन्हें नहीं मिली है—हैवानोंको भी मिली है। एक तो गायें पहलेकी तरह दूध नहीं देतीं, दूसरे नाप-तौलकर दूध देती हैं। जब मनमें आया 'पनिहर' दूध देंगी। कुछ तो अपने बच्चेके लिए चुरा लेती हैं। कुछ मनहूस ग्राहकोंको देखकर बिदक जाती हैं और जल्दी 'पेन्हाती' नहीं। भले ही उनके आगे भूसा भरकर नकली बछवा क्यों न रख दिया जाय।

काशीके राजपूत

वीरता और स्वातंत्र्य-प्रेमके लिए राजपूत जातिका नाम बड़े आदरसे लिया जाता है। इनकी प्रशस्तिमें इतिहासके अनेक पृष्ठ रंग दिये गये हैं। लेकिन आश्चर्यका विषय है कि अहीरोंके बारेमें खास चर्चा नहीं की गयी है जबकि योद्धाके रूपमें यह जाति राजपूतोंसे किसीभी हालतमें कम नहीं है। अन्य शहरोंकी बात तो मैं नहीं जानता पर काशीमें यही एक ऐसी जाति है जिसमें युयुत्साकी भावना भरी रहती है।

काशीमें जब कभी विदेशी हमले हुए अथवा दंगा फसादके दिनों इस जातिके लोग लट्ठ लेकर मैदानमें हमेशा आगे आये हैं। इन लोगों ने इस बातकी कभी परवाह नहीं की कि मुकाबलेके दुश्मनोंके पास बन्दूक और राइफलें हैं। इनका तो बस एक ही मूल मंत्र रहता है या तो हराकर लौटेंगे वर्ना सही सलामत घर वापस नहीं आयेंगे। इनके प्रिय हथियारोंमें गँड़ासा, तेजा बिछुआ, बल्लम और सेंगरी (तेलसे पकी मीरजापुरी बांसकी लाठी जिसकी हर गांठपर लोहेकी कील और निचला भाग लोहेके मोटे आवरणसे जड़ा रहता है) है। सिर्फ इन्हीं हथियारोंकी बदौलत एकबार नहीं, अनेक बार बनारसकी शान और जनताकी रक्षा हुई है। सेंगरी चलानेमें सिद्धहस्त अहीर जितना अपनी शक्ति पर अभिमान नहीं करता, उससे अधिक इस हथियारपर करता है। अगर यह अस्त्र उसके पास रहे तो दस-बीस शत्रु उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। प्रसंगवश यहाँ प्रथम विश्वयुद्धकी एक घटनाका उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

सन् १९१४की लड़ाईमें काशीसे कुछ अहीर लड़ाईमें रंगरूट बनकर गये हुए थे। कहा जाता है जब जर्मनोंकी फौज तेजीसे आगे बढ़ रही थी—समय पर मदद न पानेके कारण अँग्रेज हतोत्साह हो गये थे। उस समय देशी पलटनको आगे कर वे पीछेकी ओर घसक

गये। मैदानमें केवल देशी पलटनोंकी फौज रह गयी। जबतक उनके पास कारतूस और बम आदि रहे, लड़ते रहे। अचानक जब कारतूस समाप्त हो गयी तब उन्हें अपने चारों तरफ जर्मन सैनिक ही सैनिक नजर आने लगा। वे धीरे-धीरे आगे बढ़कर उन्हें घेरने लगे। तभी एक बनारसी अहीरको न जाने क्या सूझा कि उसने बन्दूकको उल्टीकर एक जर्मनके मलपट पर मारा—वह वहीं ढेर हो गया। लड़ाईकी यह नवीन विद्या आविष्कार होते ही सबने तेजीसे उसे अपना लिया। शिक्षित जर्मन सैनिक इस प्रकारके युद्धसे अभ्यस्त नहीं थे अथवा इस विद्यासे अपरिचित थे। पहले तो कुछ देर हक्का बक्का हो गये फिर गोलियोंकी बौछार शुरू हुई तबतक देशी पल्टन भी आ गयी। इस प्रकार जीत उन्हीं की हुई। यह है संगरीकी सिफ़त, बशर्ते उसे चलानेमें 'डी लिट'की उपाधि उस्तादसे प्राप्त हो गयी हो।

काशीकी जनता और चाहे जो करे, पर इस जातिको वह बहुत प्यार करती है, लड़ाई करती है, झगड़ा करती है, फिर भी इनसे कभी कोई मनमुटाव नहीं रखता। ठीक इसी प्रकार नम्रताकी मूर्ति बनी यह जाति आम जनतासे पेश आती है। इस जातिको सम्मानित करनेके लिए ही काशीकी जनता इन्हें "सरदार" कहकर पुकारती है। यहाँका प्रत्येक अहीर इस उपाधिसे विभूषित है। वे इस उपाधिको रायबहादुर, रायसाहब, भारतरत्न और पद्म-विभूषणसे कहीं अधिक सम्मानित समझते हैं।

काशीका अहीर गाय-भैंस पालता है। दूध, दही, मक्खन, मलाई और रबड़ी बेचता है। दूधमें वह पानी नहीं मिलाता। कहा जाता है इसके लिए कोई श्राप है। हाँ, पानीमें दूध अवश्य मिलाकर बेचता है। इस कार्यको वह अनैतिक नहीं मानता। जिन अहीरोंके पास गाय-भैंस नहीं है, वे बाजारसे दूध लाकर कमीशनपर बेचते हैं अथवा पैशराजी करते हैं। काशीमें अहीरोंका एक बड़ा वर्ग कलाकार है। भवन निर्माणमें कारीगर समझे जाते हैं।

बनारसी गुरुओंकी भाँति बनारसके सरदार भी अधिक वस्त्र पहनना पसन्द नहीं करते। घुटनों तक धोती और कन्धेपर वह एक लाल गमछा डाल लेता है। जाड़ेके दिनों कुर्ता या कमीज बदनपर डाल लेता है। लाल लंगोट या 'बिरटी' वह अवश्य पहनता है। विवाह आदिके अवसरपर वृन्दावनी (छापेका) डुपट्टा और सिरपर मुरेठा बाँधता है। गलेमें सोनेका जंतर या सिकड़ी पहननेका शौकीन होता है। गठा हुआ शरीर, भरी हुई मुश्कें, अखाड़ेकी मिट्टीसे रंगा हुआ सर, खुरदुरी मोटी अँगुलियाँ, चौड़े पँजेका पैर और बड़ी-बड़ी मूँछें रखता है। सरपर चोटीके नामपर इने-गिने बाल रहते हैं।

वह ईश्वरका बड़ा भक्त है। सत्यनारायण कथा वह अक्सर सुनता है। विवाह आदि कार्यमें सफलता प्राप्त करनेपर कथा जरूर सुनता है। बाबा विश्वनाथको वह पानी चढ़ाता है। 'भइंसासुर' बाबा, ताड़बाबा और मुड़ीकट्टा बाबाको गांजेकी चिलम चढ़ाता है। बहरी अलंग जानेका उसे शौक है। मौज-मस्ती लेनेमें वह बड़े-बड़े रईसोंको भी मात दे देता है।

बीमार पड़ने पर इलाज बहुत कम कराता है। इलाजके लिए पहले नजर उतरवा देगा, भैरवनाथपर झाड़-फूँक करवा देगा, गण्डा-तावीजका प्रयोग करेगा। हैजा, प्लेग, चेचक आदिके प्रकोपके समय मुहल्ला 'गोंठता' है, उतारा करता है, धार देता है, होम-पूजा कभी-कभी मनौती मान लेने पर दुर्गाजी पर खसी बलिदान देना साधारण बात है।

आल्हा ऊदलकी कथा और रामायण उसे बहुत प्रिय है। कजली-बिरहेका वह जबर्दस्त शौकीन होता है। काशीमें ऐसे अनेक अहीर हैं जो निरीक्षर भट्टाचार्य हैं, पर ३००से ४०० पद वाले बिरहा उन्हें कंठस्थ हैं। सिर्फ यही नहीं, वे स्वयं बनाते भी हैं। जिसमें छायावाद, रहस्यवाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवादके भाव रहते हैं। जब कभी दो बिरहेबाजोंकी आपस-में ठन जाती है तब जन समारोहके साथ दंगल किया जाता है। उस

समय सुननेवाले रात भर खड़े होकर सुनते रहते हैं। भावोंकी चमत्कारीके अलावा ज्ञानकी महानता और स्मरण-शक्तिकी परीक्षा हो जाती है। सवाल-जवाब भी होते हैं। यही एक ऐसा जन समारोह है जिसमें लाउड स्पीकरकी जरूरत नहीं होती। इस गीतमें संगतके लिए न तबलेकी जरूरत होती है न मृदंगकी। सारंगी या सितारकी आवश्यकता नहीं होती। ध्रुपद-दादरा-विलम्बितके राग नहीं देखे जाते। शायद इसीलिए आजकल चुनाव आदिके मौकेपर इस गीतका अधिक प्रचार होने लगा है। कुछ प्रगतिशील कवियोंका झुकाव इस ओर हो गया है।

एक हाथसे एक कान ढाँककर आसमानकी ओर मुँह किये जब विरहा गायक टीप अलापता है तब सड़कके दूसरी ओर तक उसकी आवाज गूँज उठती है। इधर इस गीतके साथ "करताल"का प्रयोग होने लगा है। विरहा गानेके लिए न कोई मौसम है, न समय। उसके लिए मूड बनानेकी आवश्यकता नहीं होती। जब जहाँ जीमें आया, गाया जाता है। कहा जाता है कि विरहा गायक तोतली जबानके दोषको दूर कर देता है। पक्के गानेवालोंको टीप अलापनेकी प्रेरणा विरहा गायकोंसे मिली है।

काशीका अहीर बड़ा विनम्र होता है। बाबू, भइया और गुरूजी सम्बोधनोंके साथ दूसरोंसे बातचीत करता है। लेकिन जब वह ऐंठ जाता है तब किसीको कुछ नहीं समझता। अकड़कर चलना उसकी खास आदत है। उसके चलने फिरने, दूध दुहने और बातचीत करनेमें एक अदा होती है। जिसे बिना देखे या अध्ययन किये समझाया नहीं जा सकता।

विवाह आदिके अवसर पर भले ही बारातके साथ पुलिस बैण्ड, रामनगर स्टेट बैण्ड रहे, पर दुल्हाकी पालकीके पास बारह सींगा, डफली और घण्टे वाला बाजा जरूर बजता रहेगा। इसी बाजाका अध्ययन कर बनारसी समझ जाते हैं कि सरदारकी बारात है। उसके बारातमें रिश्तेदारोंके अलावा टाट (जाति)के लोग रहते हैं। सबको कच्चा भोजन

कराता है। पैसे वाले अहीर जब दाल-भात खिलानेके बाद पूड़ी और लड्डु खिलाते है तब उसकी बड़ी चर्चा होती है—'पुड़ी आउर लड्डुआ चलउले रहल।'

भारतनाट्यम, कथकली, साँवताली और मणिपुरी नृत्यसे अलग ढंगसे उसका नृत्य होता है। उसके नृत्यमें औरतोंकी आवश्यकता नहीं होती। कोई भी पुरुष अपने ऊपर दुपट्टाडालकर औरतोंका भाव प्रदर्शन कर लेता है। डफलीके बाजेके साथ दो पुरुष खुशियालीके मौकेपर बड़े विचित्र ढंगमें नृत्य करते है।

बउलियापर नहाना, गैबीपर भाग छानना, गंगा किनारे साफा लगाना, रामकुण्ड और सगराके तालाबपर मवेशियोंको नहलाना, उस-पार निपटना और संकटमोचनका दर्शन करना उसका निश-दिनका काम है। शारीरिक विकासके लिए वह मलाई-रबड़ी चाभता है, दण्ड बैठक करता है, गदा-जोड़ी फेरता है, लाठी चलाना सीखता है और नाल उठाता है।

जिस वक्त वह मवेशियोंको लेकर सड़कपरसे गुजरता है, उस समय लगता है जैसे काशीका राजा या रईस वह स्वयं है। समूची सड़कपर मवेशियोंको फैलाये कन्धेपर लाठी रख झूमता हुआ चलता है। उसे इस बातकी फिक्र नहीं रहती कि ट्राफिक जाम हो रही है, आगे किसीको चोट लग जायगी या कोई खतरा हो जायगा। यद्यपि अहीर हमारे सामाजिक जीवनका एक आवश्यक अंग है, पर सर-दर्द भी कम नहीं। शहरके किसी भी अंचलमें जब आप प्रवेश करिये और आपकी नाकमें दुर्गन्ध आये तब समझ लीजिये कि इस गलीमें किसी सरदारका डाक बंगला है?

: बनारसकी संस्थाएँ :

बनारसमें कुल कितनी संस्थाएँ हैं, इसका हिसाब लगाना आसान नहीं है। रजिस्टर्ड संस्थाओंकी सूची तो सरकारी दफ्तरसे प्राप्त हो सकती है, पर अनरजिस्टर्डकी सूची केवल समाचार पत्रोंमें प्रकाशित उत्सव-आयोजनोंके समाचारोंसे ही ज्ञात हो सकती है।

संस्थाकी परिभाषा

संस्थाका अर्थ क्या है और संस्था बनायी क्यों जाती है? मुमकिन है आप यह बात न जानते हों। जिनकी कहीं सुनवाई नहीं होती अथवा अपनी बातें नये ढंगसे पेश करना चाहते हैं किंवा अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं, रोजी-रोजगार या जलपानकी व्यवस्था करना चाहते हैं, नेतागिरीकी ख्वाहिश रखते हैं—ऐसे लोगोंकी जमातको संस्था कहते हैं। संस्थापक उसे कहते हैं जिसके दिमागमें भाँगके नशेमें या चायकी चुस्की लेते समय यह विचार उत्पन्न हो जाय कि एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता है और वह कुछ मित्रोंपर अपनी यह राय जाहिर कर दे। सदस्योंसे कुछ अधिक चन्दा देनेवाला सभापति होता है। ऐसी संस्थाओंमें दो प्रकारके सदस्य होते हैं—एक विशिष्ट, दूसरे साधारण। विशिष्ट सदस्योंमें सभापति (यदि फालतू व्यक्ति नहीं हैं तो कोरम पूरा करनेके लिए उपसभापति भी रख लिए जाये हैं) संस्थापक, मन्त्री, उपमन्त्री और कोषाध्यक्षके अलावा कुछ इनके साथी, दोस्त होते हैं जो कि चन्देकी रकमका 'सदुपयोग' करते हैं। संस्थाएँ चन्देकी रकमसे चलती हैं, इसके अलावा गाढ़े वक्त जनतासे भी मदद ली जाती है! आखिर उन्हींकी 'भलाईके लिए' तो ये नेता, ये पदाधिकारी तन-मनसे लगे हुए हैं वर्ना इन्हें क्या गरज पड़ी है! चन्देकी

रकम अधिकतर सभापतिजीकी माला और रिक्शा किरायामें, विशिष्ट सदस्योंके जलपानमें और मन्त्री तथा कोषाध्यक्षके घर गृहस्थीके काम आती है। अविश्वासका प्रस्ताव लानेवाले, चाँव-चाँव करनेवाले भी विशिष्ट सदस्य होते हैं। साधारण सदस्योंकी इज्जत केवल चुनावके समय होती है।

बनारसी संस्थाएँ

अन्य शहरोंकी संस्थाओंका अध्ययन इस लेखकने नहीं किया है, पर बनारसी संस्थाओंके बारेमें वह कुछ जानता है। बनारसमें एक ऐसी संस्था है जिसमें सभापति, संस्थापक, मन्त्री, कोषाध्यक्ष और सदस्य एक ही व्यक्ति हैं। कुछ संस्थाएँ ऐसी हैं जिनके साइनबोर्ड दिवालोंपर लटकते हैं, पर कभी कोई कार्रवाई नहीं होती। काशीके कुछ साहित्यिक किसी-न-किसी संस्थाके संस्थापक, सभापति, मन्त्री अथवा कोषाध्यक्ष अवश्य होते हैं। उनकी जेबमें चन्देकी बही, कार्ड, निमन्त्रणपत्र और लेटरपैड अवश्य रहता है। कहनेका मतलब यह कि उनकी कमीजमें जितनी जेब हैं, उससे अधिक उनके पास संस्थाएँ हैं। जो जितना व्यस्त है, वह उतना ही बड़ा है। इस तरहकी संस्थाओंके जन्मदाता बनारसके होटल और लस्सी-चाय की दूकानें हैं, क्योंकि विशिष्ट व्यक्तियोंके रहते हुए भी कोई इन्हें अपने घर मीटिंग करने नहीं देता। यही वजह है कि बजड़ेपर कवि सम्मेलन या गोष्ठीका आयोजन होता रहता है। किसी संस्थाका वार्षिकोत्सव करना है तो झट उनके मन्त्रीसे लेकर कोषाध्यक्ष तक चन्देकी रसीद लेकर होटलोंमें चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं। यदि आप जरा-सी दिलचस्पी लेते हैं तो आपको ये लोग मूँड़नेसे बाज नहीं आयेंगे। आपकी कृतिकी तुलना प्रेमचन्द, गोर्कीसे, आपकी उदारताकी धन्ना सेठसे और प्रतिभाकी तुलनाके बारेमें पूछिये मत। बस जो कुछ हैं, आप ही हैं। किन्तु जब चन्देकी रसीद कट गयी तब आपकी गणना मूर्खोंमें की जाती है। पूरा चन्दा देनेपर भी जल्सेमें आपको एक बीड़ा पान या एक कप चायके लिए पूछा

जायगा। अगर प्रबन्धक शरीफ आदमी है तो हाथ जोड़ देगा और कुछ अपरिचितोंसे परिचय करा देगा—बस। बहुत अधिक शरीफ हुआ तो चाय जलपानको पूछ लेगा।

साहित्यिकोंकी तरह प्रत्येक शिक्षक और प्रत्येक राजनीतिक नेता किसी-न-किसी संस्थाका संस्थापक है। कुछ लोग तो एकसे अधिक संस्थाके संस्थापक हैं। सरकारसे सहायता लेनेके लिए भरसक प्रयत्न होते हैं, बैठकोंमें भले ही 'बाप-पूत बराती' 'माई-धिया गौनहारिन' की कहावत चरितार्थ हो अर्थात् सभापति, मन्त्री और कोषाध्यक्षके अलावा अन्य कोई उपस्थित न रहे, लेकिन दूसरे दिन समाचार पत्रोंमें इन तीनों व्यक्तियोंका भाषण लिखकर जरूर छपनेके लिए जाता है।

सबसे बड़ी खूबी यह है कि इन संस्थाओंका वार्षिकोत्सव काफी धूम-धामसे मनाया जाता है और उसके लिए कहीं-न कहीं स्थान प्राप्त हो जाता है। लेकिन मीटिंग तो किसी भी रेस्तरां होटलमें चायकी चुस्कियाँ लेते समय ही होती हैं। ये ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें आप 'चलती फिरती संस्थाएँ'की संज्ञा दे सकते हैं।

कुछ प्रतिष्ठित संस्थाएँ भी काशीमें हैं, किन्तु आप यदि उनमें पहुँचे तो कार्यवाही शुरू होनेके पहले वहाँकी समस्यापर बहस करनेके बजाय आलू-परवलका भाव, बेकारीकी चर्चा, बेतनकी मुसीबत और दफ्तरकी परेशानियोंकी चर्चा चल पड़ती है। सभापतिके आने पर (बनारसमें मन्त्रियों तथा माननीय श्री श्रीप्रकाशजीके अलावा कोई भी समयसे नहीं पहुँचता) जब कार्यवाही शुरू होती है तब अजीब 'कौवारोर' मचता है। गनीमत समझिये कि सभापतिजी कुछ 'सम्हाल' लेते हैं।

कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जहाँके सभापतिको खाने-पीनेका डौल लग जाता है, वहाँके सभापति मेम्बरोंके वोट अपनी जेबसे रकम खर्चकर खरीदते हैं। यह मानी हुई बात है कि अगर आपका सदस्यता शुल्क कोई चुका देता है

तो आप उसका ही गुण गायेंगे। बनारसमें ऐसे सभापति और ऐसे सदस्योंकी कमी नहीं है। फलस्वरूप अच्छी संस्थाएँ भी राजनीतिका अखाड़ा बन जाती हैं। संस्थाके नामपर चन्दा माँगकर कुछ लोग घरखर्च चलाते हैं। जिनका सरकारी अधिकारियोंपर प्रभाव है, उनका क्या पूछना।

एक ऐसी संस्था है जिसकी एक बैठकमें कुल १२ आदमी उपस्थित थे, फलस्वरूप कोरम पूरा न होनेके कारण बैठक स्थगित कर दी गयी। लेकिन चुनावके समय खदेरू-बखेड़ू सभी आये थे। चाय-जलपानका भी टोटा पड़ गया। कुछ लोग जब यह जान लेते हैं कि आज जलपानका 'दिव्य' प्रबन्ध है, तब सबसे पहले पहुँच जाते हैं, वर्ना साधारण सदस्यको कौन कहे मन्त्री-सभापति और कोषाध्यक्ष तक लापता रहते हैं।

बनारसमें कुछ 'मौसमी' संस्थाएँ हैं जो जाड़ेमें होटलोंके किसी कमरेमें और गर्मीके दिनोंमें बजड़ेपर गोष्ठियाँ करती हैं। भांग छानी, गलेबाजी की और चाय जलपानके पश्चात् घर लौटे। बनारसकी अनेक साहित्यिक संस्थाएँ इसी तरहकी हैं। इनमें गम्भीर विचार विमर्श नहीं होते—केवल तफरीहके लिए आयोजन होता है।

यही वजह है कि लोग चन्दा माँगनेवालोंसे घबराते हैं। उनका हाल ठीक उस व्यक्ति जैसा हो जाता है जो दिल्लीका लड्डू खाय तो पछताय, न खाये तो भी पछताय। अगर वे चन्दा नहीं देते तो बुरा और दे दिया तो बेकार हुआ। संस्थाओंकी यह हालत जनतासे छिपी नहीं है, इसलिए साहित्यिक आयोजनमें वह दिलचस्पी नहीं लेती। लेकिन तफरीहवाले आयोजनोंमें टूट पड़ती है। अगर नाटक आदिका प्रोग्राम हुआ तो हर मेम्बरको कमसे कम तीन पास चाहिए। एक उसके लिए, एक बीबीके लिए और एक फालतू। बच्चोंके लिए फ्री कन्सेसन रहता है। यद्यपि निमन्त्रण पत्रमें—बच्चोंको साथ लाना मना है—छपा रहता है। 'खानदानके चिरागको' साथ न रखें तो कहाँ छोड़ जायँ। इसके अलावा पितामें जो गुण

मौजूद है, वह उनकी सन्तानोंमें भी उत्पन्न हो—यह दृष्टिकोण तर्कमें प्रस्तुत किया जाता है।

अगर आप खुशहाल ज़िन्दगी व्यतीत करना चाहते हैं तो भूलकर किसी भी संस्थाका मेम्बर मत बनिये यह एक नेक सलाह है।

: बनारस के यान-वाहन :

जिस नगरीके राजाका वाहन साँड़, रानीका वाहन सिंह, राजकुमारका वाहन चूहा, युवराज (षडानन)का वाहन मयूर और कोतवालका वाहन कुत्ता हो, उसकी विशेषता विचित्रताकी खोजमें आजके भयंकरसे भयंकर वैज्ञानिकको श्रीमती नानीकी याद आये बिना न रहेगी।

राजा-रानी-युवराज-कोतवालके इन वाहनोंपर मुलाहजा फरमायें—सभी एक दूसरेके जानी दुश्मन! एक ही परिवारमें इतने खतरनाक 'फिगरों'को समेटकर रखना, सचमुच कठिन समस्या है। मजा तो यह है कि कोई भी अपने वाहनोंमें, 'चेंज' करनेको तैयार नहीं।

अपना ख्याल है, अपनी काशीके राजा शंकर गॉडने, वाहनोंके प्रश्नपर 'गृह युद्ध' न हो जाय इसीलिए सबके लिए अलग निवासकी व्यवस्था कर दी।

कोतवाल साहबकी 'कोतवाली' भैरोनाथ, राजकुमार साहबको लोहटिया तथा रानीका रनिवास शहरके एकदम दक्खिनमें। पतिसे इतनी दूर रहनेमें दुर्गाजीको अखरा तो, पर अपने वाहन सिंह महोदयकी 'गुंडई'से वे परिचित थीं सो स्वीकार कर लिया। हजरत सिंह आदतन खूनी थे। राजाके वाहन मिस्टर वृषभको तो वे अपना 'राशन' ही समझते थे।

यह 'पारिवारिक-पार्टीशन' कब हुआ?—इसपर अपने पुराणोंने चुप्पी साध ली है सो हमें भी चुप ही रहना है।

अब आइये, प्रजाके यानों (सवारी) पर.........

काशीकी सड़कोंपर रिक्शा, तांगा, इक्का, टैक्सी और सरकारी बसें चलतीं हैं। पहले यहाँ काफी तायदादमें खुली तथा बन्द दोनों किस्मोंकी बग्धियाँ चलती थीं। खुली बग्धियोंपर पुरुष और बन्द बग्धियोंमें

महिलाएँ बैठती थीं। बग्घियोंपर बैठनेवाले रईस समझे जाते थे। उस जमानेमें बग्घियाँ रखना साधारण बात नहीं थी। कौन इतना बड़ा ढट्ठा रखनेके लिए अस्तबल बनवाये। इसके अलावा दो-दो साईस रखना पड़ता था, वर्ना स्कूली लड़के पीछे उचककर बैठ जाते थे जिससे रईसीमें बट्टा लगता था। जो लड़का नहीं बैठ पाता था, वह शैतानी करनेके लिए—"बग्घीवान, पीछे लड़का, लगे चमोटी।" आवाज दे देता था। इस प्रकार लड़के मुफ्तमें रईसीकी शानपर चूना लगाते फिरते थे। मजबूरन पीछे चाबुक मारना पड़ता था। इसके अलावा शादी-बारातमें हमेशा मंगनी भी देनी पड़ती थी। इन्हीं सब झंझटोंके कारण रईसोंने बग्घीका रखना छोड़ दिया। आजकल भी कुछ लोगोंके पास बग्घियां हैं पर उनका कोई खास महत्व नहीं, वर्ना उस जमानेमें जनाब यों अकड़कर इस गाड़ीपर बैठते थे—मानों लार्ड कर्जन जा रहे हों। आजकल जो चन्द बग्घियाँ सड़कोंपर दिखाई देती हैं, उसपर महिलाएँ गंगा नहाने, विश्वनाथ दर्शन करने अथवा किसी सखी-सहेलीसे मिलनेके लिए जाती हैं।

बग्घियोंके बाद तांगोंका दर्जा माना जाता है। कहनेका मतलब जिस प्रकार बम्बईमें टैक्सीमें फर्स्ट क्लासके अफसर, बसमें सेकेण्ड क्लासके अफसर, लोकल ट्रेनमें थर्डक्लासके बाबू और ट्रामसें कुली-कबाड़ी चढ़ते हैं, उस प्रकार बनारसमें बग्घीका दर्जा फर्स्टक्लास रहा तो तांगा सेकेण्ड क्लास। स्वयं बनारस नगरपालिका उन्हें दोयम क्लासकी सवारीका सार्टिफिकेट देती थी और आज भी देती है। स्टेशनसे उतरने पर इक्केवाले भले ही दौड़ आयें, पर तांगेवाले कभी नहीं आते थे। किराया तो हमेशा चौगुनी हाँकते थे। कुछ कहिए तो तुरत कहते—'बाबू ई एक्का नाहीं हौ। ताँगा हौ ताँगा।" कहनेका मतलब यह रईसोंके लिए गाड़ी है, कबाड़ियोंके लिए नहीं। आपको गरज हो बैठिये और रईस बनिये, वर्ना इक्का तैयार है ही। उन दिनों सवारीवाले इक्कोंपर चढ़ना

शानके खिलाफ समझा जाता था। इक्केकी गणना थर्ड क्लासकी सवारियोंमें होती थी। तांगेपर बैठनेवाला आदमी रईस न सही, बड़ा आदमी ज़रूर समझा जाता है।

ताँगोंके बाद बनारसमें इक्कोंका नम्बर आता है। ऊपर जैसा कि कहा जा चुका है कि इक्का थर्ड क्लासकी सवारी समझी जाती है—यह बात सभी इक्कोंके लिए लागू नहीं है। सवारी इक्का उन इक्कोंको कहा जाता है जो कचहरी, स्टेशन, विश्वविद्यालय या मुख्य बाजारोंमें चलते हैं। जिसके घोड़े महीनेमें १५ दिन सात्विक भावसे एकादशी व्रत रखते हैं। 'कम खाना, गम खाना' उनका गुरुमंत्र होता है और जो मंजिले मकसूदतक जानेके लिए दस कदम आगे तो पाँच कदम पीछे हटना अपना 'पुण्य नियम' मानते हैं।

नगरपालिकाके नियममें ऐसे इक्कोंपर तीन सवारीका बन्धन भले ही हो, परन्तु इक्केवाले सवारीकी संख्या पाँच होनेमें विशेष 'सन्तुष्टि' प्रकट करते हैं। अगर कहीं ऐसा न हुआ तो समझ लीजिये, रास्ते भर, चनेवाले पंसारी, घासवाले घसियारोंके प्रति उसके मुखसे ऐसे 'पुनीत संबोधन' प्रसारित होंगे कि सवारीको 'आनन्द' आ जाता है। बेचारे घोड़ेकी माँ बहनोंसे अपना निकट सम्बन्ध, चाबुककी फटकारमें, वह समा बांधेगा कि फिर.........

इसके ठीक विपरीत इक्कोंकी दूसरी श्रेणी होती है—गहरे-बाज! इसके घोड़े हेल्थ बनानेके लिए दूध-घी-मलाईका भी सेवन करते हैं। इसपर बैठना सौभाग्यमें शुमार किया जाता है। अधिकतर ये प्राइवेट होते हैं। एक पुराने रईसने अपने 'गहरेबाज घोड़ोंके लिए कबीरचौरा मुहल्लेके पास, किसी जमानेमें, जो 'तबेला' बनवाया था, वह छोटे-मोटे महलसे होड़ लेता था! आज भी 'लछन-छकनका तबेला' देखकर उस रईसीकी चमकका अनुमान लगाया जा सकता है!

गहरेबाज

गहरेबाजका अर्थ अपने आपमें इतना ठोस है कि उसकी अधिक व्याख्या करनेकी जरूरत नहीं। सीधे-सादे शब्दोंमें—गहरेबाज इक्का उस गाड़ीको कहते हैं जो 'तीन सवारीसे अधिक मत बैठाओ, बाँयेंसे चलो, १० मीलकी रफ्तारसे चलो' इत्यादि कानूनको धक्का लगाना अपनी शान समझता हो। अगर कोई इक्का गहरेबाज है तो वह दुलकी चालसे भी चल सकता है और सरपट चालसे भी। बनारसमें एक कहावत मशहूर है कि दमकल जब आग बुझानेके लिए चलता है तब उसके लिए सात खून माफ रहता है अर्थात् दमकल गन्तव्य स्थानपर पहुँचते-पहुँचते सात लाश सड़कपर बिछा दे, तो उसे रोका नहीं जा सकता और न उसपर मुकदमा चलाया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जब बनारसी गहरेबाज सड़कपर चल रहा है तब उसके लिए कितने खून माफ हैं, इसका परिमाण नहीं है। यही वजह है कि ट्राफिक पुलिस भूलकर भी कभी गहरेबाजोंका चालान नहीं करती। जबतक वह हाथ उठाकर गाड़ीको रोके या नोटबुक निकालकर कुछ दर्ज करे तबतक गाड़ी भाष्करा, गैबी या रोहनिया पहुँच जाती है।

गहरेबाज रखना साधारण कलेजेकी बात नहीं है। गहरेबाज रखना, हाथी पालनेके बराबर माना जाता है। ऐरे-गैरे नत्थू खैरे इसे रख ही नहीं सकते, भले ही करोड़पति या लखपतिका साइनबोर्ड अपने पीछे क्यों न लटकाये हुए हों। अब अधिकतर बहरी अलंगके शौकीन गुरू, रईस और सरदार लोगके पास गहरेबाज दिखाई पड़ते हैं। जिनकी तबीयत गहरेबाजी किये बिना नहीं मानती।

गहरेबाजोंका रेस अब तो नहीं के बराबर होता है। जब बनारस इतना गुलजार नहीं था तब सड़कें अधिकतर सूनी रहती थीं। गहरेबाजकी गहरेबाजी शामको अथवा सुबह होती थी। उन दिनों

गहरेबाजोंकी टापोंसे बनारसकी सड़कें काँपा करती थी। क्या मजालकी गहरेबाजको काटकर दूसरा गहरेबाज निकल जाय। यह अपनी शानके खिलाफ बात मानी जाती थी। हमेशा एक दूसरेको पिछाड़नेके लिए—वाह पट्ठे भिड़ल रहे, कहाँ जाला सरवा—हटल रहे बाँयेंसे—जाये न पावे—आदि नारोंसे वातावरण मुखारित करते रहते हैं। घोड़ोंको भी अपनी जवानीकी सारी ताकत अपने प्रतिद्वन्दीको पिछाड़नेमें लगा देनी पड़ती थी। जब यह रेस किसी सड़कपर शुरू होती है तब देखने लायक दृश्य होता है। मीलों दूर रहनेवाले लोगोंको यह मालूम हो जाता है कि गहरेबाज आ रहा है। फलस्वरूप लोग एक किनारे हट जाते थे। घोड़ोंकी नालसे चिनगारियाँ छूटने लगती है, उसपर सवार लोग प्राण हथेलीपर रखे, खूँटी पकड़े घोड़ेको बढ़ावा देते हुए आगे बढ़ जाते थे। बम टूट जाना, आपसमें भिड़ जाना और घायल हो जाना साधारण बात थी। रेसमें पिछड़ जाना, मुखपर कालिख पुत जानेसे कुछ अधिक ही समझा जाता है। पहले लोग हारे हुए घोड़ोंको मनहूस मानकर गोली मार देते थे और इक्केमें आग लगा देते थे।

आज भी मडुआडीहके उसपार, सारनाथ और रामनगरके मेलेमें गहरेबाजोका दृश्य देखनेमें आता है।

टैक्सी, जीप, लारी और पीकअप तो बनारसके कुली कबाड़ियोंके पास भी है, पर बनारसी इक्का चुने हुए लोगोंके पास है। आपको मोटर, लारी और हवाई जहाजतक किरायेपर मिल सकते हैं और जीप, टैक्सी तथा पिकअप जरूरत पर मँगनीमें भले ही मिल जाँय, पर बनारसी गहरेबाज न मँगनीमें मिलेगा और न किराये पर।

आप अपने मनमें भले ही गर्व कर लें कि अबतक आप जहाज, स्टीमर और समुद्री जहाजमें सफर कर चुके हैं; बचपनसे अबतक खच्चर, गदहा, ऊँट और घोड़ेपर चढ़ चुके हैं, पर अबतक आपको

गहरेबाजपर चढ़नेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा। गहरेबाजपर आप तभी सवारी कर सकते हैं जब आपकी जान-पहचान किसी बनारसी रईससे हो और उसके पास गहरेबाज हो। साथ ही उसे नित्य बहरी अलंग जाकर नहाने-निपटनेकी शौक हो। बनारसी गहरेबाज बनारसके साधारण यानोंमें नहीं है, बल्कि उसे बनारसकी शान समझी जाती है। इस यानको इतनी इज्जत बक्शी गयी है कि एक विशुद्ध बनारसी इस गाड़ीके आगे रोल्स रायसकी मोटरको दो कौड़ीका समझता है।

गांधी ब्राण्ड यान

बग्घी, तांगोंके बाद तृतीय श्रेणीकी सवारी रिक्शाको माना गया है। यही एक सवारी बनारसकी साम्यवादी सवारी है। कुछ लोग इसे गाँधी ब्राण्ड (थर्ड क्लास) सवारी कहते हैं। इसपर सईससे लेकर रईसतक, मंत्रीसे पद्म-विभूषण तक बिना संकोच बैठते हैं। एक बात यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि बनारसी रिक्शोंका किराया भारतके सभी शहरोंसे काफी सस्ता है। यहाँ आधा रिक्शा किराये पर मिलता है और पूरा रिक्शा भी। कहनेका मतलब यदि कोई एम० एल० ए० रिक्शेपर बैठा हो और रिक्शावाला अन्य एक सवारीकी तलाशमें है तो आप पैसे देकर उस-पर बैठ सकते हैं। एक सवारीसे दो सवारीका पैसा नहीं लिया जाता बशर्ते आपने पूरा रिक्शा न कर लिया हो!

इस गाँधी-ब्रांड यान—यानी रिक्शेने, इक्केवालोंकी कमर तोड़ दी है और तांगेवालोंकी हालत पतली कर दी है। लोकप्रियताका प्रमाण इससे बड़ा और क्या हो सकता है कि इस समय बनारसमें संभवतः नगरकी आबादीमें, दस परसेंट रिक्शा चालक हैं।

हाँ, इस प्रगति युगमें भी, जबकि सरकारकी मुख्य इनर्जी 'नव-निर्माण'में सर्फ हो रही है, कुछ सड़कें 'सौतके बच्चों'की संज्ञासे विभूषित

हैं। ऐसी सड़कोंपर अगर रिक्शेपर सवारी की जाय तो लगभग वही अनुभव प्राप्त हो जाता है, जो फुटबालको, खिलाड़ियोंके पैरोंका।

रिक्शेवाले ज़रा 'तबीयतदार' होते हैं। उनकी यह 'तबीयतदारी' ढालदार सड़कोंपर देखनेमें आती है। सवारीके साथ ही रिक्शे और अपने शरीरकी 'मरम्मत' करवानेमें वह 'गौरव'का अनुभव करता है।

आजकल रिक्शोंमें भी दो क्वालिटी दीख पड़ती हैं। 'टैक्सी' और 'टरकाऊ'! टैक्सी उसे कहते हैं, जिनकी गद्दी और ढांचेमें 'आधुनिकता' घुसी रहती है और 'टरकाऊ', वही 'बाबाआदमी'! स्पष्ट है, 'टरकाऊ', 'टैक्सी'के समक्ष 'फीका' मालूम होगा।

बनारसमें टैक्सियाँ इफरात हैं, पर उनका किराया बम्बई-कलकत्ताके टैक्सियोंसे २० गुना अधिक है। सारनाथ, रामनगर और विश्व विद्यालय-के दर्शनके लिए इनका उपयोग किया जाता है, पर आश्चर्य होता है कि इतना किराया क्यों? क्या इसमें भी गहरेबाजी होती है? गोकि टैक्सियोंकी पूछ विवाह आदिके मौकेपर ही अधिक होती है।

सरकारी बसें

अभी हालसे बनारसमें बसें चलने लगी हैं। अब इसे बनारसमें यातायातके लिए प्रमुख यान मान लिया है। एक तरहसे इसे रिक्शोंका 'इन्लार्जमेण्ट' कहा जा सकता है। रिक्शोंमें एक सहूलियत यह है कि उसपर माल लादकर स्वयं बैठ जाइये। आपको माल ढुलाईका किराया नहीं देना पड़ेगा—बसोंमें देना पड़ता है। बनारसकी बसोंमें दो—एक नहीं, बहुत सी विशेषताएँ हैं। मसलन यहाँकी बसें अन्य बड़े शहरोंकी भाँति नहीं है जो केवल स्टापेजोंपर खड़ी होती हैं, जितनी सीट रहेगी उतनी सवारी लेंगे। यहाँ यह सब नियम नहीं है। बस कण्डक्टर अधिकसे अधिक सवारी लेनेका प्रयत्न करता है, आखिर सभीको जानेकी जल्दी रहती है। नाहक परेशान होगा। इस मानेमें कण्डक्टर बड़ा

दयालु होता है। जब जहाँ जी चाहा, गाड़ी आपके सामने खड़ी हो जायगी। अगर आपका घर या दफ्तर दो स्टापेजोंके बीच है तो कण्डक्टरसे कह दीजिये, वह आपको दरवाजेपर उतार देगा। यहाँ ड्राइवर और कण्डक्टर दोनों ही बड़े उदार, सज्जन और मानवतावादी हैं। बशर्ते उनकी गाड़ी लेट न हो अथवा ड्राइवर साहबका मूड बिगड़ा हुआ न हो। अगर गाड़ी लेट है और आपको जिस स्टापेज पर उतरना है, अगर आप जरा चूक गये तो तीसरे स्टापेजपर आपको उतार दिया जायगा। अगर ड्राइवर साहबकी मूड खराब है तो इस प्रकार मुँह बनायेंगे मानो महामुनि अष्टावक्रके वंशज हैं। साथ ही फर्मायेंगे—'यह सरकारी बस है—खालाजीका घर नहीं है। आपने इसे रिक्शा समझ लिया है कि जहाँ मनमें आया, रोकवा लेंगे।'

आप भले ही सोचते रह जाँय कि आखिर कल इसी ड्राइवरने मेरे कहने पर यहाँ गाड़ी रोकी थी—आज इसे क्या हो गया। इसे अपना—अपना 'मूड' कहते हैं—भाई साहब!

: बनारसी साँड़ :

'साँड़' शब्दसे मेरा मतलब उस चौपाये से है, जिसे पूँछ तो रहती है, साथ ही त्रिशूलके फलकी तरह दो सींग भी है, जिन्हें बधिया नहीं बनाया जाता। नगरपालिकाकी कूड़ा गाड़ीको कौन कहे, बैलगाड़ी अथवा हलमें भी जो कभी जोते नहीं जा सकते। जो हर गली और हर सड़कपर मस्तीके साथ झूमते हुए चलते हैं। जिन्हें दायें-बायेंकी कोई फ़िक्र नहीं रहती, जो दफा १४४, कर्फ़्यू अथवा मार्शल लाके कानूनके पाबन्द नहीं है। 'यह सड़क मरम्मतके लिए बन्द है' 'यहाँ मल-मूत्र करना मना है'—इन कानूनोंका उल्लंघन करना जिनका जन्मसिद्ध अधिकार है, ऐसे ही एक दर्शनीय जीवको हम साँड़के नामसे सम्बोधन करते हैं।

साँड़ एक ऐसी नस्लका, एक ऐसी कौमका और ऐसे निरीह किस्मका जानवर है जो हिन्दुस्तान और पाकिस्तानमें ही नहीं, बल्कि दुनियाके तमाम मुल्कोंमें पाया जाता है। फर्क सिर्फ रंग और डील डौलका होता है। रूसी साँड़ चितकबरे और प्रकृतिके कम्युनिस्ट होते हैं, अमेरिकी साँड़ बादामी रंगके पूँजीवादी टाइपके होते हैं, फ्रांसीसी जरा दुबले-पतले और नाज़ुक होते हैं। पाकिस्तानी सांड़ बुर्कापोश और हिन्दुस्तानी सांड़ सफेद-पोश होते हैं। कहनेका मुख्य मतलब यह है कि जंगल और मैदानी इलाकोंमें हर जगह हर किस्मके साँड़ पाये जाते हैं।

साँड़ोंकी नगरी

लेकिन दुनियामें पाये जानेवाले किसी भी स्थानसे कहीं अधिक साँड़ बनारसमें हैं। कम्युनिस्ट, पूँजीवादी, आतंकवादी, समाजवादी, गांधीवादी और सर्वहारा—सभी प्रकारके सांड़ यहाँ घूमते रहते हैं। कहा जाता है

कि तीन लोकमें एक ही साँड़ था जिस पर बाबा विश्वनाथ सवारी करते थे। आजके जितने साँड़ सारे संसारमें हैं, वे सब उसी साँड़की औलाद हैं, जैसे आदमकी औलाद आदमी और मनुके पुत्र मनुष्य दुनियामें बिखर गये हैं।

काशी तीन लोकसे न्यारी है। वह शेषनागके फनपर अथवा शंकरके त्रिशूलपर स्थित है। चूँकि काशी बाबाकी राजधानी है, जाड़ेके दिनोंमें वे यहीं रहते हैं, गर्मीमें पहाड़पर आबहवा बदलने चले जाते हैं, इसलिए यह जरूरी है कि सांड़ अपने मालिकके राज्यमें काफी तायदादमें रहें, क्योंकि जमाना तटस्थ रहते हुए भी गुर्राहट और हमलेकी आशंकासे भयभीत है। ऐसी हालतमें पता नहीं, कब किसकी और कितनी संख्यामें जरूरत पड़ जाय। यही कारण है कि काशीको अपना अस्तबल समझकर साँड़ इतनी आजादीसे रहते हैं।

इसके अलावा काशीमें साँड़ोंकी अधिकता होनेका दूसरा कारण यह है कि कुछ लोग बगैर इनकम टैक्स, सेल टैक्स और सुपरटैक्स अदा किये बेरोक टोक शिवलोक जाना पसन्द करते हैं। मुमकिन है ऐसे ही शरीफोंके लिए तुलसीदासजीने काशीको मुक्ति, ज्ञानकी खान कहा है। हर तरहके जरायम याने, हत्या करनेके बाद भी आप काशीमें चले जाइए। यह निश्चित है कि आपको मुक्ति मिल ही जायगी, बशर्ते आप गोदान न कराकर अपने जीवित कालमें ही वृषोत्सर्ग करा दें अथवा अपने वारिसको चेतावनी दे दें कि गयामें पिंडदान, तेरहीका भोज, बर्सी और गोदान भले न करें, लेकिन वृषोत्सर्ग अवश्य कर दे। इससे आपको दोहरा पुण्य लाभ होता है। पहला यह कि वृषोत्सर्गसे शिवलोकका रास्ता खुल जाता है, यह शास्त्रीय मतसे पुण्य है। दूसरे एक बेचारे निरीह पशुको जिसे ये नर-पिशाच बधिया बनाकर आजीवन किसी हल या बैलगाड़ीके नीचे जोत देते हैं, उसे मुक्ति मिल जाती है।

कहा जाता है बनारस नगरपालिकाके किसी सदस्यने एकबार यह सुझाव दिया था कि काशीकी सड़कोंपर जो बहुतसे साँड़ लावारिस घूमते हैं उनका उपयोग कूड़ागाड़ी खींचनेमें किया जाय। इसकी सूचना काशीके साँड़ोंको मिल गयी। एक दिन जब वे स्टेशनसे घर वापस आ रहे थे तब दो साँड़ोंने उनकी ऐसी खातिर की कि बेचारे महीनों अस्पतालमें पड़े रहे। इस घटनाके बाद किसी सदस्यने इन साँड़ोके प्रति आक्षेप नहीं किया।

खैर, यह कहानी कहाँ तक सच है, कहा नहीं जा सकता। लेकिन यह स्पष्ट है कि नगरपालिका भूलकर भी कभी इनका उपयोग नहीं करती। दुनियाके तमाम चौपायोंके लिए कांजीहौजका दरवाजा खुला रहता है, लेकिन इन साड़ोंके लिए खुला दरवाजा भी बन्द हो जाता है। अगर कहीं आँख बचाकर चले भी गये तो मारकर भगा दिये जाते हैं।

दो-चार साँड़ोंको छोड़कर, जो ग्वालके खास हैं, बाकी सभी दगे हुए साँड़ वास्तवमें बनारसी साँड़ हैं। यों मनौती माननेवाले बकरेका भी कान काटकर छोड़ देते हैं। वृषोत्सर्ग किये साँड़ोंके पीठपर छोटा त्रिशूलवाला लोहा दाग कर छोड़ा जाता है। बकरा छोड़ देनेके बाद कुछ दिनोंतक इधर-उधर दिखाई देता है, फिर कहीं गायब हो जाता है। लेकिन साँड़ोंकी संख्या ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। बनारस यदि पाकिस्तानमें होता तो शायद साँड़ोंकी संख्या इतनी न होती।

साँड़ पूज्य हैं

काशीके साँड़ोंकी पूजा होती है। शिव-वाहन होनेके कारण ही वे पूज्य हैं। क्योंकि उनकी पीठपर कूबड़के रूपमें स्वयं शिवजी विराजमान रहते हैं। जो साँड़ जितना मोटा होगा, उसका कुबड़ उतना ही बड़ा होगा। इन्सानको भले ही खानेको न मिले, लेकिन इन्हें फल, मीठा और फूल खिलाया जाता है। बाकायदे पाँव दबाये जाते हैं, नमस्कार

किया जाता है। जैसे किसी मन्त्रीसे काम निकालनेके लिए उनके प्रायवेट सेक्रेटरीकी खातिर की जाती है। ठीक उसी प्रकार शिव भक्तिका प्रदर्शन सांड़ोंके जरिये किया जाता है।

कुछ ऐसे भी साँड़ हैं जो भोजन न पानेपर किसी सट्टीमें घुस जाते हैं, भर पेट न सही, भर मुँह अवश्य खा लेते हैं। खोमचों वालोंका थाल उलट देना, किसी होटलवालेके यहाँ मेहमान बन जाना मामूली बात है। मजा यह कि इतना होनेके बावजूद इन्हें सजा नहीं दी जाती।

पाकिस्तानके निर्माता

बनारसमें अबतक जितने भी दंगे हुए उन सबकी मूलमें इन साड़ोंका ही हाथ रहा। चौकमें या अन्य कहीं दो साँड़ आपसमें जुट गये, बस भगदड़ मच गयी और यह अफवाह फैल गयी कि चल गयी यानी दंगा शुरू हो गया। फिर झटपट दुकान बन्द, भगदड़ और इसी बीच किसी गुंडेने किसीके पेटमें कुछ भोंक दिया तो सबेरे नमक मिर्च मिलाकर लोगोंकी जबान चल गयी और समाचार पत्रोंमें घटना छप गयी।

राम राज्य परिषदके एक सदस्यसे मैंने पूछा, क्यों साहब! आप लोग गोबध बन्दी आन्दोलन चला रहे हैं, ठीक है। लेकिन सौंड़ रक्षक आन्दोलन क्यों नहीं चलाते? अगर साँड़ नहीं रहेंगे तो गायोंकी संख्या कैसे बढ़ेगी, आप दूध, दही, मक्खन कैसे खायेंगे?

उन्होंने फरमाया हम इस आन्दोलनमें सांड़ोंकी वकालत इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वे दरअसल गद्दार हैं, इतिहासके कलंक हैं। बनारसमें ही नहीं, विभिन्न नगरोंमें हुए दंगोंके मूल जन्मदाता यही हैं। यदि ये दंगे न होते तो आज भारत अखंड बना रहता और पाकिस्तान बननेकी नौबत न आती। पर हकीकत यह है कि ये पाकिस्तानके मित्र हैं। यहाँ मुफ्तका माल खाकर मोटे हो रहे हैं।

गौरैया शाही

गौरैया शाही काशीकी एक अद्भुत घटना है। सन् १८५२में काशीमें फाटक बन्दी तोड़नेका हुक्म जारी हुआ, उन्हीं दिनों वृषोत्सर्ग किये गये साँड़ पकड़ कमसरियट पहुँचानेका भी हुक्म जारी हुआ। जनताने इसका विरोध करना शुरू किया। इनके तत्कालीन अगुआ भाऊ जानी तथा वीरेश्वर जानी थे। इसका खास कारण था। उन दिनों गुजरात, काठियावाड़ तथा अन्य स्थानोंके आस्तिक हिन्दू अपने पितरोंके नाम जो साँड़ 'वृषोत्सर्ग' करके छोड़ते थे, उनके भूसेके लिए कुछ वार्षिक भेजा करते थे। उक्त सारी रकम वीरेश्वर व भाऊ जानीके पास आती थी। इसीसे उन्होंने साँड़ोंको कमसरियट पहुँचानेका विरोध किया, लेकिन इस विरोधका कोई असर नहीं हुआ। तत्कालीन कलक्टर श्री ग्राविन्सने जनताके प्रतिनिधियोंको नाटी इमलीपर एकत्र किया, परन्तु समझौता नहीं हो सका। इतनेमें ही जनता कुम्हारकी दुकानसे गौरैया उठा-उठाकर कलक्टर और पं० गोकुलचन्द कोतवालपर फेंकने लगी। कई अफसर इसी हुरदंगमें घायल हो गये। इसी काण्डको 'गौरैया शाही' कहते हैं। नतीजा यह हुआ कि फाटक बन्दी तो तोड़ दी गयी, लेकिन दगे साँड़ोंका पकड़ा जाना रोक दिया गया।

बेताजके बादशाह

बुलबुलकी लड़ाई, तीतर, बटेर, मुर्गकी लड़ाई आपने देखी होगी मेढ़ा, भैंस, बिल्ली और कुत्तोंकी लड़ाई भी आपने देखी होगी। इनके लड़नेका समय और स्थान होता है, पर साँड़ोंकी लड़ाईमें न समय देखा जाता है और न बाजी लगायी जाती है। जब जी चाहा और जहाँ तबियत हुई लड़ पड़े। यह आपकी शराफत है कि आप बगल हट जाते हैं और अपनी दूकान समेट लेते हैं।

जब किसी साँड़को लड़नेकी इच्छा होती है तब वह गधेकी तरह चिल्लाता नहीं। एक मनोवैज्ञानिकने लिखा है कि गधे हर घंटेपर इस तरह चिल्लाते हैं कि जनताको समयका अन्दाज लग जाय। लेकिन साँड़ उस समय गरजेगा जब उसका सिर खुजलायेगा। किसी गलीकी मोड़पर आकर गरज उठेगा अर्थात् है कोई लड़ने वाला? अगर उस गलीमें कोई हुआ तो एकबार निगाह उठाकर गरजनेवालेकी ओर देखेगा। अगर वह यह समझ जाता है कि मैं इसे पछाड़ दूँगा तो वह विपक्षीसे भी तेज आवाजमें गरज उठेगा—'आओ बेटा, एक हाथ हो जाय'। वर्ना चुपचाप चल देगा। कभी-कभी दो साँड़ सड़कके दोनों ओरसे केवल फुँकारते हुए गुजर जाते हैं, दोनों ही एक दूसरेको पहलवान समझते हैं, लेकिन एक दूसरेकी बेइज्जती करना नहीं चाहते।

अगर लड़नेकी इच्छा हुई तो एकबार फुत्कारा और खटाकसे, जैसे दो प्रेमियोंकी आँखें या दिल आपसमें टकरा जाते हैं, इसके बाद आगे-पीछे खिसकते रहते हैं, उस समय सारा आवागमन रुक जाता है। यदि कोई साँड़ कमजोर होता है और भागनेकी फिक्रमें रहता है तो दूसरा ज्यों ही यह भांप लेता है त्योंही जहाँ मौका मिला सींगसे मारना शुरू कर देता है। अगर उस समय 'हुर्र छे' की आवाज हुई तो कायर साँड़ भी शेर बन जाते हैं। इस तरह इनकी लड़ाई केचुये-सी लसड़-पसड़ चलती रहती है और तबतक चलती है जबतक कि दोनों लोहू-लुहान न हो जायँ। बहादुरी और जिन्दादिलीके ये जीते-जागते प्रतीक हैं।

पता नहीं, किस दिलजलेने 'राँड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी' के तुकमें इनका नाम जोड़ दिया। आज अगर 'दास मलूका' जीवित होते तो उन्हें यह पद्य फिरसे इस तरह लिखना पड़ता—

अजगर करे न चाकरी साँड़ करे नहिं काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम॥

: बनारसी पान :

बनारसी पान सारे संसारमें प्रसिद्ध है। बनारसमें पानकी खेती नहीं होती। फिर भी बनारसी बीड़ोंकी महत्ता सभी स्वीकार करते हैं। लगभग सभी किस्मोंके पान यहाँ, जगन्नाथजी, गया और कलकत्ता आदि स्थानोंसे आते हैं। पानका जितना बड़ा व्यवसायिक केन्द्र बनारस है, शायद उतना बड़ा केन्द्र विश्वका कोई नगर नहीं है। काशीमें इसी व्यवसायके नामपर दो मुहल्ले बसे हुए हैं। सुबह ७ बजेसे लेकर ११ बजे तक इन बाजारोंमें चहल-पहल रहती है। केवल शहरके पान विक्रेता ही नहीं, बल्कि दूसरे शहरोंके विक्रेता भी इस समय इस जगह पान खरीदने आते हैं। यहाँसे पान 'कमाकर' विभिन्न शहरोंमें भेजा जाता है। 'कमाना' एक बहुत ही परिश्रमपूर्ण कार्य है—जिसे पानका व्यवसायी और उसके घरकी महिलाएँ करती है, यही 'कमाने' की क्रिया ही बनारसी पानकी ख्यातिका कारण है। इस समय भी बनारसमें दस हजारसे अधिक पुरुष और स्त्रियाँ 'कमाने' का कार्य करती हैं। कमानेका महत्व इसीसे समझा जा सकता है कि इस समय जो पान बाजारमें हरी देशी पत्तीके नामपर चालू है, उसे ही लोग एक सालतक पकाते हुए उसकी ताजगी बनाये रखते हैं। ऐसे पानोंको 'मगही' कहा जाता है। मगही जब सस्ता होता है तब पैसे बीड़ा मिलता है, लेकिन जब धीरे धीरे स्टाक समाप्त होने लगता है तब चार आने बीड़ा तक दाम देनेपर प्राप्त नहीं होता।

यों बनारसी जनता मगही पानके आगे अन्य पानको 'घास' या 'बड़का पत्ता' संज्ञा देती है, किन्तु मगहीके अभावमें उसे जगन्नाथी पानका आश्रय लेना पड़ता है, अन्यथा प्रत्येक बनारसी मगही पान खाता है। इसके अलावा सांची-कपूरी या बंगला पानकी खपत यहाँ नाम मात्रकी होती

है। 'बंगला पान' बंगाली और मुसलमान ही अधिक खाते है। मगही पान इसलिए अधिक पसन्द किया जाता है कि वह मुँहमें जाते ही घुल जाता है।

पान खानेकी सफाई

बनारसके अलावा अन्य जगह पान खाया जाता है, लेकिन बनारसी पान खाते नहीं, घुलाते हैं। पान घुलाना साधारण क्रिया नहीं है। पानका घुलाना एक प्रकारसे यौगिक क्रिया है। यह क्रिया केवल असली बनारसियों द्वारा ही सम्पन्न होती है। साधारण व्यक्ति इस कष्ट साध्य अभ्यासको अपना नहीं पाते। पान मुँहमें रखकर लारको इकट्ठा किया जाता है और यही लार जबतक मुँहमें भरी रहती है, पान घुलता है। कुछ लोग उसे नाश्तेकी तरह चबा जाते है, जो पान घुलानेकी श्रेणीमें नहीं आता। पानकी पहली पीक फेंक दी जाती है ताकि सुर्तीकी निकोटिन निकल जाय। इसके बाद घुलानेकी क्रिया शुरू होती है। अगर आप किसी बनारसीका मुँह फूला हुआ देख लें तो समझ जाइए कि वह इस समय पान घुला रहा है। पान घुलाते समय वह बात करना पसन्द नहीं करता। अगर बात करना जरूरी हो जाय तो आसमानकी ओर मुँह करके आपसे बात करेगा ताकि पानका, जो 'चौचक जम गया होता है, मजा किरकिरा न हो जाय। शायद ही ऐसा कोई बनारसी होगा जिसके रूमालसे लेकर पायजामेतक पानकी पीकसे रंगे न हों। गलियोंमें बने मकान कमर तक पानकी पीकसे रंगीन बने रहते हैं। सिर्फ इसी उदाहरणसे स्पष्ट है कि बनारसी पानसे कितना पुरदर्द मुहब्बत करते हैं। भोजनके बाद तो सभी पान खाते हैं, लेकिन कुछ बनारसी पान जमाकर निपटने (शौच करने) जाते हैं, कुछ साहित्यिक पान जमाकर लिखना शुरू करते हैं और कुछ लोग दिन-रात गालमें पान दबाकर रखते हैं।

बनारसी पानका महत्व

बनारसी पानका खास महत्व यद्यपि उसके कमानेसे संबंधित है तथापि बनारसी पानमें व्यवहृत होनेवाली सामग्रियोंका भी कम महत्व नहीं है। यद्यपि इन्हीं सामग्रियोंसे देशके प्रत्येक कोनेमें पान लगाया जाता है, तथापि बनारसी पान विक्रेता उसमें अपनी मौलिकता दे देता है। हर पानको लगानेके पहले खूब साफ कर लिया जाता है, फिर गीले कपड़ेसे रगड़ लिया जाता है ताकि गर्दके कारण किरकिराहट उसमें न रहे। सुपारी चौकोर आकारकी काटी जाती है, ताकि वह दाँतमें न फँसे। पहले सुपारी काटकर पानीमें भिगो दिया जाता है जिससे उसका कसैलापन दूर हो जाय। इसके बाद भीगी हुई सुपारी प्रयोगमें लाते हैं। कड़ापन न रहनेसे यह सुपारी मगही या अन्य पानके साथ तुरन्त घुल जाती है।

बनारसी पानमें कत्था विशेष ढंगसे बनाकर प्रयोग किया जाता है। पहले कत्थेको पानीमें भिगो देते हैं। अगर उसका रंग अधिक काला हुआ तो उसे दूधमें भिगोते हैं। फिर उसे पकाकर एक चौड़े बर्तनमें फैला दिया जाता है। कुछ घण्टे बाद जब कत्था जम जाता है तब उसे एक मोटे कपड़ेमें बाँधकर सिल या जाँता जैसे वजनी पत्थरके नीचे दबा देते हैं। इससे कसैलापन और गरमी निकल जाती है। इसके पश्चात् सोंधापन लाने तथा बाकी कसैलापन निकालनेके लिए उसे गरम राखमें दबा दिया जाता है। इतना करनेपर वह कत्था थक्का सा हो जाता है। उसका रंग काफी सफेद हो जाता है। कत्थेके इस थक्केमें पानी मिलाकर खूब घोंटकर और इत्र-गुलाब जल आदि मिलाकर तब पानमें लगाया जाता है। इस तरहसे बनाया हुआ कत्था बनारसी पानकी जान है।

बनारसी पानमें जिस प्रकार कत्था-सुपारी अपने ढंगकी होती है, उसी प्रकार चूना भी। ताजा चूना यहाँ कभी प्रयोगमें नहीं लाते। पहले चूने-

को लाकर पानीमें बुझा दिया जाता है, फिर तीन-चार दिन बाद उसे खूब घोंटकर कपड़ेसे छान लिया जाता है। इससे चूनेके सारे कंकड़ वगैरह छन जाते हैं। छने हुए चूनेका पानी जब बैठ जाता है तब उसके नीचेका चूना काममें लाया जाता है। यदि चूना तेज रहता है तो उसमें दूध या दहीका पानी मिलाकर उसकी गरमी निकाल दी जाती है।

पानकी दूकानकी मर्यादा

बनारसमें पानकी हजारों दूकानें हैं। इसके अलावा 'डलिया'में बेचने-वालोंकी संख्या कम नहीं है। प्रत्येक चार दूकान या चार मकानके बाद आपको पानकी दूकानें मिलेंगी। महालके मकानों, गलियों और सारे शहरकी सड़कोंपर पानकी पीककी मानों होली खेली जाती है। पानमें इतनी सफाई रहनेके बावजूद पान खानेवाले शहरको गन्दा किये रहते हैं। वैसे यहाँका दूकानदार अपनी दूकानमें किसी किस्मकी गन्दगी रखना पसन्द नहीं करता। सिवाय अपने हाथ और कपड़ोंको कत्थेके रंगसे रंगकर रखनेके, वह सभी सामान खूब साफ रखता है। आदमकद शीशा कत्थेका बर्तन, चूनेकी कटोरी, सुपारीका बर्तन और पीतलकी चौकी मांज-धोकर वह इतना साफ रखता है कि बड़े-बड़े कर्मकाण्डी पण्डितके पानी पीनेका गिलास भी उतना नहीं चमक सकता।

याद रखिये कोई भी बनारसी पान विक्रेता अपने पानकी दूकानकी चौकीपर हाथ लगाने नहीं देगा और न लखनऊ, दिल्ली, कानपुर, आगराकी तरह चूना माँगनेपर चौकीपर चूना लगा देगा कि आप उसमेंसे उँगली लगाकर चाट लें। आप सुर्ती खाते हैं तो आपको अलगसे सुर्ती देगा—यह नहीं कि जर्दा पूछा और अपनी इच्छाके अनुसार जर्दा छोड़ दिया। यहाँ तक कि चूना भी आपको अलगसे देगा। आप उसकी दूकान छू दें, यह उसे कत्तई पसंद नहीं, चाहे आप कितने बड़े अधिकारी क्यों न हों। आपको पान खाना है, पैसा चौकीपर फेंकिए, वह आपके

लिए दिल्ली, लखनऊकी तरह पहलेसे पानमें चूना-खैर लगाकर नहीं रख छोड़ता। आपकी मांगके अनुसार वह तुरन्त लगाकर आपको पान देगा। कुछ जगहोंपर पहले चूना लगाकर उसपर कत्था लगाते हैं। बनारसमें यह नियम नहीं है। इससे पान जल जाता है और पूरा स्वाद नहीं मिलता। यहाँ चूनेको थोड़ासा एक कोनेमें लगा देते हैं। प्रत्येक बनारसी पीली सुर्ती या इधर नयी चली सादी सुर्ती खाना अधिक पसन्द करता है; काली सुर्तीसे उसे बेहद चिढ़ है। पीली सुर्ती तेजाबी होनेके कारण सेहतको नुकसान पहुँचाती है, इसीलिए इधर सादी सुर्तीका प्रचलन हुआ है। सादी सुर्तीको पहले पानीसे खूब धो लेते हैं और सारा गर्द-गुबार साफ कर लेनेके बाद उसमें बराश, छोटी इलायची, पिपरमिण्टके चूर तथा गुलाबजल मिलाकर बनाया जाता है। सादी सुर्तीमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि अधिक खा लेने पर भी चक्कर नहीं देती।

: बनारसी पिकनिक :

बनारसी पिकनिक किस ढङ्गसे की जाती है, वह क्या है, उसका स्थान कहाँ-कहाँपर है और कैसे लोग उसमें सम्मिलित होते हैं, इस सब प्रश्नोंका उत्तर बिना बनारसी पिकनिक देखे नहीं दिया जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि बनारसी पिकनिक अपने ढङ्गकी निराली है। बड़े-बड़े भोज या पार्टीमें वह मजा नहीं, वह जीवन नहीं और न वह मस्ती या बहार है, जो बनारसी पिकनिकमें है। बनारसमें रहकर जो व्यक्ति बनारसी पिकनिकमें नहीं गया, वह अपनेको बनारसी कहनेका गर्व नहीं कर सकता। कहनेका मतलब यह है कि बनारसी पिकनिक करनेवाला शुद्ध बनारसी है। इन पिकनिकोंमें बनारसियोंका सही रूप और उनका जीवन देखा जा सकता है। कुछ देरके लिए दर्शक भी आत्मविस्मृत-सा हो जायगा। इस दुनिया-के परे भी कोई दुनिया है—जहाँ न हाइड्रोजन बम है, न राष्ट्रसंघकी चों-चों है और न हैं-जीवनकी बेबसियाँ। वहाँ तो सारी दुनियाके गमको भुलाकर मौज-मस्तीकी दरियामें अपने-आपको डुबा लेना ही मुख्य कार्य समझा जाता है।

कहा जाता है कि एकबार जयपुरके महाराज प्रतापसिंहके साथ पद्माकरजी श्रावणमें काशी आये थे। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि बनारसी लोग श्रावणमें ही पिकनिकका आयोजन करते हैं। सड़कपर कुछ गौनहारिनें गाती हुई जा रही थीं और उनके पीछे कुछ गुण्डे 'रंग है री रंग है' आवाज देते हुए चल रहे थे। इस दृश्यका कोई तात्पर्य महाराज की समझमें नहीं आया। फलस्वरूप पद्माकरजीको कहना पड़ा—

सावन सखीरी मनभावनके संग बालि
क्यों न चलि झूलत हिंडोरैं नव रंग पर ;

कहै पद्माकर त्यों जोबन उमंगनि लैं
उमगि उमंगित अनंग अंग-अंग पर ।
चारु चुनरीकी चारों तरफ तरंग तैसी
तंग अँगिया है तनी उरज उतंग पर ;
सौतनिके बदन बिलोकै बदरंग होत
रंग है री रंग तेरी मेंहदी सुरंग पर ॥

पिकनिकके स्थल

बनारसी पिकनिकके खास स्थल हैं । सभी जगह मनानेका रिवाज नहीं है और न आनन्द ही आता है । बनारसी भाषामें जिसे 'निछद्दम' कहा जाता है—ऐसे स्थानोंपर बनारसी पिकनिकोंका आयोजन होता है । बनारसमें ऐसे स्थान तीन श्रेणीके हैं । रामनगर, वेदव्यास, सारनाथ और राजातालाब प्रथम श्रेणीवाले स्थान हैं । दुर्गाजी, भास्करा, बेचूवीर और औरातले द्वितीय श्रेणीवाले हैं । तीसरी श्रेणीमें तो अनेक स्थान आ जाते हैं । इसके अलावा कुछ लोग विन्ध्याचल आदि स्थानोंमें भी चले जाते हैं । प्रथम श्रेणीवाले स्थानोंपर खास-खास समयपर मेले लगते हैं जो अपने ढङ्गके निराले होते हैं । रामनगर और वेदव्यास जाड़ेके दिनोंमें, राजा-तालाब बरसातके प्रथम चरणमें, चकिया, सारनाथ बरसातके दिनोंमें जाते हैं । चूँकि गर्मी बड़ी बेशर्म होती है और उन दिनों बादशाही ढङ्गसे मनाना सम्भव नहीं होता, इसलिए गर्मीमें पिकनिकके आयोजन नहीं होते । यह याद रखियेगा कि बनारसी पिकनिकमें कंजूसी नहीं बरती जाती । एक बड़ी पार्टीमें जो खर्च बैठता है, बनारसी पिकनिकमें उससे कहीं अधिक खर्च होता है ।

पिकनिकका आयोजन

बनारसी पिकनिक एक दो व्यक्तियोंके गुटसे नहीं होता । कमसे कम तीन या उससे अधिक व्यक्ति एक आयोजनमें रहते हैं । हाँ, दो परिवार

अगर रहे तो ठीक रहता है, क्योंकि परिवारमें कंची-पेंची और रेजगारियाँ (बच्चे) भी सम्मिलित रहते हैं। लेकिन एक बनारसी पिकनिकमें अधिक व्यक्तियोंको सम्मिलित भी नहीं करना चाहता। उसके शब्दोंमें 'भउसा' हो जाता है। अन्य पार्टी या भोजकी तरह बनारसी पिकनिकमें मेजपर बना बनाया भोजन प्लेटमें परोसा हुआ नहीं मिलता। वहाँ जाने-वाले व्यक्ति 'भोजन' बनानेमें मेहनत करते हैं। इसलिए वहाँ जाकर अमुक वस्तु नहीं है, कहाँ मिलेगी—इस चिन्तासे मुक्त रहनेके लिए सभी आवश्यक सामान साथ ले जाते हैं। मेलाके अवसरपर हँड़िया, पुरवा, पत्तल, गोहरा और मसाला आदिका टोटा पड़ जाता है तथा महँगा भी मिलता है। इसलिए कुछ लोग घरसे ये सामान भी ले जाते हैं—पर बहुत कम लोग ऐसा करते हैं। हाँ, कलछुल, बेलना, कड़ाही और पौना वगैरह ले जाते हैं। यह कोई जरूरी नहीं कि सभी लिट्टी-चुरमा खायँ। कोई पूड़ी-पोलाव भी खाता है तो कोई पकौड़ी भी तलता है। कहनेका मतलब जिसके मनमें जो आता है, वही बनाकर खाते हैं।

यह सारी तैयारियाँ कर घरसे चलते हैं। जब हुजूम चलता है तबकी छटा देखने लायक होती है। रंग-बिरंगी साड़ियाँ, सलवारें, साफा, दुपट्टा और घर-गृहस्थीका पूरा डेरा रिक्शे, ताँगे और एक्केपर चलते हैं। घोड़ों-की टापोंसे सड़क काँप उठती है और मीलोंतक सड़क गुञ्जायमान हो उठती है। लगता है, जैसे दिल्लीसे राजधानी दौलताबाद बसने जा रही है। सम्भवतः आपको विश्वास न हो इसलिए आपको लगे हाथ एक उदाहरण दे दूँ। आजसे १५० वर्ष पूर्व महाराज जयनारायण घोषाल काशी आये थे। बनारसियोंके अलमस्त जीवनका वर्णन उन्होंने जिस ढङ्गसे किया है उसे पढ़नेके पश्चात् बनारसियोंके पिकनिक और जन-समारोहके शौकका पता चल जाता है—

नगरेर जत लोक करिया भोजन,
दुर्गायात्रा हेतु सभे करेन गमन।

केहो पालकी चढ़े केहो रथे जाय ,
केहो गज, केहो बाजी, जारे जेई भाय ।
पद ब्रजे असंख्य लोकेर आगमन ,
गले गुल्फे बाहुते बिजटा आभरण ।
शिरे पाग गोलाबी, कुसुमी गोलेलार ,
शोषणि हरि रंग जतेक प्रकार ।
कदाचित सादा पाग काहारो माथाय ,
अङ्ग भङ्ग रङ्ग सङ्ग युवाजन जाय ।
चौड़ा लाल किनारीर धूति केहो परि ,
रेशमी किर्मिजी धूति जरीर किनारी ।
नाना रंगे किमखाब फुलाम मसरू ,
केहो बागलता गोल बदन अमरू ।
कत शल जरिर उड़ानि देखि गाय ,
एईमत सारि-सारि सर्वलोक जाय ।
कि लिखि शोभार कथा लय मम मने ,
जे मत फुटिलो फूल आनन्द कानने ।

इसके बाद निश्चित जगह जाकर स्थान तजबीजते हैं। जहाँ पासमें पानीकी सुविधा हो, वहीं डेरा जमाते हैं।

पिकनिकके बहार

डेरा जम जानेके बाद गोहरा, हड़ियाका इन्तजाम कर चूल्हा सुलगाकर उसपर अलग-अलग सामान बैठा दिया जाता है। भात, दाल, तरकारी, खिचड़ी, लिट्टी, पोलाव, पकौड़ी और पूड़ी बनायी जाती है। कोई पानी ला रहा है, कोई मसाला पीस रहा है, कोई चावल बीन रहा है, कोई तरकारी छील रहा है और कोई साफा लगा रहा है। इन पिकनिकोंमें साफा लगाना और भाँग छानना प्रधान कार्य माना जाता है। उधर हड़ियेमें

खदबद कर भोजन तैयार हो रहा है, इधर गुरू लोग भाँग काट रहे हैं, साफा लगा रहे हैं। साबुनकी पूरी बट्टी एक ही धोतीपर घिस जाती है। पेड़के हर तनेपर सफेद धोतियाँ टँग जाती हैं। लगता है—जैसे धोबी घाट है। बनारसी साफा लगानेमें अपनी शान समझते हैं—भले वह धोती कल ही धोबीके घरसे क्यों न आयी हो, भाँग तो बाबाका प्रसाद है—नशा नहीं।

आँखोंमें गुलाबी डोर खींचे खेतोंमें निपटने चले जाते हैं, फिर स्नान कर दिव्य हो, भोजनपर आ जुटते हैं। नंग-धड़ंग बदन और बाँहोंकी गुल्लियाँ कसरती बनारसीका रंग उभार देती हैं। भोजनके पश्चात् साफा लगाये हुए कपड़ोंको पहनकर मन्दिरोंमें या दर्शनीय स्थलोंको देखने चल पड़ते हैं। 'आगे आत्मा पीछे परमात्मा' कहावत यहीं लागू होती है। इसके बाद शामतक यह काफिला घर लौटता है। इसे कहते हैं बनारसी पिकनिक। जहाँ मनकी ही नहीं, तनकी भी आजादी रहती है। है दुनियाके किसी परदेमें ऐसी आजादी?

: यह है बनारस ! :

अधिकतर लोगोंका विश्वास है कि विज्ञापन आधुनिक युगकी देन है। यह बात बिलकुल बेबुनियाद और बेमतलबकी है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—काशी नगरीकी स्थापना।

आजसे पचास वर्ष पहले जिन क्षेत्रोंमें शङ्करके गण और लक्ष्मीके वाहन रहते थे, अब वहाँ आदमकी औलादोंके लिए भी जगह नहीं। दो आनेपर कमरा और दो रुपये प्रति माह किरायेपर डाक बँगला मारे-मारे फिरते थे। आज यह हालत है कि कुँवारोंकी कौन कहे डबल बीबियोंके रहते हुए भी अस्तबलतक खाली नहीं मिलता। ऐसी हालतमें आप कल्पना कर सकते हैं कि प्राचीन कालमें यह उजाड़ खण्ड नगरी बिना विज्ञापन किये बस गयी ?

जिस नगरीमें शंकरके गण रहते थे, उसे बसानेमें उन्हें छठीका दूध याद आ गया होगा। दूर क्यों, लार्ड विलियम बेण्टिकके जमानेमें भी यहाँ डकैतियाँ हुआ करती थीं।

यही वजह है कि राजा काश्यने बड़े तिकड़मसे इस नगरीकी स्थापना की वर्ना इसका नाम काशी नगरी कभी न होता। सबसे पहले उन्होंने भारतवर्षमें ऋषि-मुनियोंको भेजकर यह प्रचारित करवाया कि काशी 'अविमुक्त क्षेत्र' है, यहाँ मरनेपर सीधे शिवलोकका सार्टिफिकेट मिल जाता है, यकीन न हो तो यहाँ बसकर देखो। इस प्रचारसे यह लाभ हुआ कि कुछ लोग काशी आये और बस गये। धीरे-धीरे यह प्रचार बढ़ता ही गया। उसका नतीजा यह हुआ कि जो लोग मरकर सीधे शिवलोककी सैर करना चाहते थे, यहाँ आकर बसने लगे।

लेकिन इसमें एक दिक्कत यह हुई कि काशी नगरी महाश्मशान बनती गयी। बसानेका उद्देश्य विफल ही रहा। सारा शहर हरवक्त भाँय-भाँय करता रहा। जिन लोगोंका, यमराजके यहाँसे परवाना देरमें आने वाला था, वे इस वातावरणमें घबरा गये। आखिर उन लोगोंने एक तिकड़म किया, जिससे वे लोग जो अपने साथ हैजा, प्लेग, महामारी और चेचकके कीटाणु लेकर यहाँ मरने आये थे, चंगे होने लगे। इस प्रकार शहरकी मृत्यु संख्या घटने लगी और बनारस बसता गया।

तिकड़म

अब सवाल है—वह तिकड़म था क्या? आधुनिक युगके कोट-पैण्ट-वाले उसे अन्धविश्वास कहते हैं और बनारसी भाषामें 'चलउआ', 'टोटका', 'धार' और 'गाँव गोठाई' आदि क्रिया।

अगर किसी मुहल्लेमें हैजा-चेचक जैसी बीमारियोंके पधारनेकी आशंका है तो फौरन भाई लोग चन्दा करते हैं और मुहल्लेकी त्रिमुहानीपर [जहाँ पीपल या नीमका वृक्ष जरूर रहे] अथवा चौरा माई किम्वा कोई देवता रहते हैं; वहाँ लगातार कई दिनोंतक होम होता है; मुहल्लेकी औरतें लोटेमें पानी लेकर सारे मुहल्लेका चक्कर लगाकर उसकी रक्षाका कार्यकर देती हैं। जिस प्रकार खरदूषणको मारनेके लिए जब भगवान् रामके बाद लक्ष्मण भी जाने लगे तब उन्होंने सीताजीकी कुटियाके दरवाजेपर धनुषसे एक लकीर खींचकर कहा था कि हे देवि, इस लकीरके बाहर मत आना। इसके भीतर सिवाय बड़े भइयाके और कोई नहीं जा सकता। ठीक उसी प्रकार मुहल्लेकी गोठाईसे कोई भी बीमारी उस परिधिको पारकर भीतर नहीं जा पाती।

अगर आपके मुहल्लेमें चेचक-हैजा जैसी कोई खतरनाक बीमारी आ गयी है तो फौरन 'चलउवा' निकलवा दीजिये। आपके मुहल्लेकी बीमारी तुरत दूसरे मुहल्लेमें 'ट्रांसफर' हो जायगी। लेकिन यह काम जरा सावधानीसे

करना पड़ता है वर्ना सिर्फ आपकी नहीं, मुहल्लेवालों की लाशें सड़कपर मछलीकी भाँति छटपटाती हुई दिखाई देंगी।

आज भी जब किसी मुहल्लेमें ऐसी बीमारियोंकी दो-चार घटनाएँ लगातार होती हैं तब लोग तुरत सजग हो जाते हैं। रात भर पहरेदारीका कार्य चलता है। नगरपालिकाकी स्ट्रीट लाइटके अलावा हर घरके दरवाजे-पर लालटेन अथवा बिजलीके बल्व रात भर जलते रहते हैं। हर गलीके नुक्कड़पर भाई लोग संगरी लेकर पहरा देते हैं। अगर कोई भी संदिग्ध आदमी गठरी लिए दीख गया तो खैरियत नहीं। रात भर 'कहाँ जाला सरवा, जाय न पावे, धर सारेके' आदि आवाजें आती हैं। बच्चोंको शामके पहले ही खाना खिलाकर सुला दिया जाता है, ताकि वे 'हदस' (डर) न जायँ। गृहणियाँ भयके कारण काँपती रहती हैं, पर देवर लोग समझाते रहते हैं—'भउजी, तू डरा जिन—बेखटके सूता। हम लोगनके रहते, कौन सरवा चलउवा लेके आई। बिछाके रख देब सारन के।'

कभी-कभी ऐसा होता है कि दूसरे मुहल्लेवाले अपनी आफत जब चलउवाके जरिये पड़ोसके मुहल्लेमें रख जाते हैं तब इसका पता ओझाईके जरिये लगाया जाता है। ओझाईके जरिये सिर्फ उस व्यक्तिका नाम ही नहीं ज्ञात होता, बल्कि और भी अनेक रहस्य ज्ञात हो जाते हैं। जो व्यक्ति इस क्रियाको जानता है, उसका मुहल्लेमें बड़ा सम्मान किया जाता है। ओझाईकी एक प्रक्रियाको 'हबुआना' भी कहा जाता है। किस व्यक्तिके कारण मुहल्लेवालोंके ऊपर यह आफत आयी इस बातका पता भले ही ज्योतिषीगण न बता सकें, सी० आई० डी० वाले फेल हो जायँ, पर ओझाईके जरिये जरूर पता लग जाता है। सिर्फ यही नहीं, बल्कि इसका निराकरण कैसे होगा इस बातका पता भी लग जाता है। यही वजह है कि इस क्रियापर अधिक विश्वास किया जाता है।

पता नहीं, इन क्रियाओंसे कुछ लाभ होता है या नहीं, पर ऐसी घट-नाएँ प्रत्येक वर्ष शहरके विभिन्न अंचलोंमें होती हैं। जहाँ बड़े-बड़े डाक्टर,

हकीम और वैद्य फेल हो रहे हों, वहाँ चलउआ—ओझाई रामबाण ही नहीं 'दशरथ-बाण' की तरह असर करता है। उताराके जरिये रोगीकी बीमारी तुरन्त ट्रांसफर कर दी जाती है। किसी भी त्रिमुहानीपर रकसवा कोहड़ा, कागजकी पालकी, पान, सुपारी, फूल, माला, बतासा और पञ्चमेवा रख दिया जाता है। कहीं-कहीं बकरीका बच्चा बाँध दिया जाता है। अगर किसीको मालूम हो जाय कि अमुक त्रिमुहानीपर उतारा रखा हुआ है तो वह भूलकर भी उधरसे घर नहीं जायगा। लोगोंका ऐसा विश्वास है कि जो व्यक्ति पहले-पहल 'उतारा' लांघता है 'उतारे' का प्रभाव उसपर पड़ता है। इसीलिए हर व्यक्ति यही सोचता है कि सम्भवतः मैं ही पहला व्यक्ति हूँ। उतारा-चलउवाके नामपर आज भी बड़े-बड़े महारथी दहल जाते हैं। उतारा रखते वक्त पीछे मुड़कर नहीं देखा जाता और रखते वक्त टोंक-टाक करनेपर उसका असर नहीं होता। यही वजह है कि यह काम चुप-चाप होता है।

उतारा और चलउवासे कुछ हो या न हो, पर एक क्रिया है—'बान चलाना' उससे कितनोंको मरते देखा गया है। टोटका विज्ञानके अन्वेषकोंको चाहिए कि इस विद्याके रहस्यसे साधारण जनोंका परिचय करायें। आजके स्पुतनिक युगमें नकली ग्रहकी तरह आसमानमें हड़िया चलते देखा गया है और वह जहाँ गिरा है, वहाँ किसीको ले बीता है अर्थात् जिसके नामपर चला उसकी मौत निश्चित है।

कुछ अन्य प्रथाएँ

चलउआ और उताराके अलावा बनारसमें कुछ ऐसे रहस्य भी है जो उनके अपने हैं। मुमकिन है, वैसे दृश्य आपको अन्यत्र कहीं न दीखें। इन रस्मोंको बनारसवालोंने इस तरह अपना लिया है मानों जैसे उनकी यही संस्कृति हो।

उदाहरणके लिए गंगा पुजइया। बनारसके अलावा अन्यत्र कहीं यह प्रथा शायद ही देखनेमें आती हो। विवाहके पश्चात् जब बहू ससुराल आती है तब मुहल्ले भरकी औरतें वर-वधूको सजाकर घरसे गंगा घाट तक बाजे-गाजेके साथ, 'सोनेकी थालीमें जेवना परोसों' गाती हुई चलती हैं। उस समय बेचारे दूल्हेकी हालतपर तरस आता है। मुझे अच्छी तरह याद है कि हज़ार विरोध करनेपर भी मेरे कतिपय मित्रोंको गंगा पुजइयामें जाना पड़ा था। उनकी नज़रें शर्मसे ऊपर नहीं उठता थीं। जब वे घर आये तब यही कहा कि भगवान करे कोई विवाह न करे, अगर करे तो गंगा पुजइयामें न जाय।

अक्सर बनारसमें आपने कुछ लोगोंकी ज़मीनमें लेटते तथा निशान लगाकर पुनः उसी जगहसे आगे लेटते देखा होगा, यह शयन परिक्रमा है। इससे पुण्य लाभ होता है।

इसी तरहका एक दूसरा दृश्य है—गया दर्शनका प्रदर्शन। आधुनिक युगके लोग जब रूस, चीन आदि देख आते हैं तब पत्रकार गोष्ठीमें अथवा 'बार एसोसियेशन'में उनका भाषण होता है, ठीक उसी प्रकार जब कोई दम्पति 'गया' दर्शन कर आता है तब वे लाल रंगकी धोती पहने, कन्धेपर एक बांसकी लकड़ी रखे और हाथमें एक लोटा पानी लेकर छिड़कते हुए चलते हैं। जो लोग इस प्रथाके बारेमें नहीं जानते, अक्सर ऐसा दृश्य देखनेपर चकित रह जाते हैं। कुछ लोग तो सोचते हैं कि बुढ़ऊने इस उम्रमें दूसरी सगाई (विवाह) की है।

: बनारसकी ठगी :

इतिहास और धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनसे पता चलता है कि ठग विद्या आधुनिक युगकी देन नहीं है, बल्कि हमारी सभ्यता और संस्कृतिकी भाँति प्राचीन परम्पराकी एक कड़ी है। जिस प्रकार हम धर्म और संस्कृति-की रक्षा करते आ रहे है, ठीक उसी प्रकार इस कलाकी रक्षा करते आ रहे हैं।

प्राचीन कालमें इस कलाके बड़े-बड़े आचार्य हो चुके हैं। उन लोगों-की महती कृपाके कारण इस कलाका इतना विकास हुआ कि इसे 'कला' की संज्ञा देकर सम्मानित किया गया। यद्यपि इसकी गणना उपकलाओंमें की गयी है, लेकिन इससे इसकी महत्तामें कोई कमी नहीं हुई। देव-दानव-से लेकर राक्षस और मानवतक बराबर सुविधानुसार इस कलाका उपयोग करते रहे। सम्भव है, प्राचीन कालमें इस विद्याके कई केन्द्र रहे हों, जहाँ-से प्रति वर्ष अनेक स्नातक डिग्रियाँ लेकर जन-समुदायमें इस कलाका प्रदर्शन करते रहे। धीरे-धीरे कुछ लोगोंके लिए यह कला जीविकाका साधन बन गयी। इन लोगोंको ही हम आधुनिक भाषामें 'ठग' कहते हैं।

प्राचीन आचार्य

इस विद्याके जन्मदाता कौन थे, इस विषयपर इतिहास ही नहीं, बल्कि धार्मिक ग्रन्थ भी मौन हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि इस कलाके जन्मदाता स्वयं चतुर्भुज भगवान् विष्णु थे, जिन्होंने देवी वृन्दापर सर्व-प्रथम इस कलाका प्रदर्शन किया था। श्रीकृष्णने महाभारतमें, इन्द्रने कर्णके साथ और हनुमानने मेघनादके साथ जो ठगी की है, उसे सभी जानते हैं।

इस कलाके जन्मदाता भगवान् विष्णु भले ही रहे हों, पर इस कलाके प्रथम आचार्य शिव-पुत्र [कार्तिकेय] थे। काशी शिवकी नगरी है और शिवके ज्येष्ठ पुत्र इस कलाके सर्वप्रथम आचार्य हुए अर्थात् 'एक तो तितलौकी, दूसरे नीम चढ़ी' वाली कहावत हुई। इससे यह अन्दाज लगाया जाता है कि इस कलाका जन्म काशीमें ही हुआ था। काशीके लिए यह गौरवका विषय है कि यहाँके ठगोंने प्राचीन युगकी इस कलाको लुप्त होनेसे बचा रखा है।

भारतका प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध न होनेके कारण यह बताना मुश्किल है कि इस कलाके अबतक कितने आचार्य हो चुके हैं? उन्हें इस कलाकी शिक्षा किस केन्द्रसे प्राप्त हुई थी? इस कलाके कितने केन्द्र भारतमें थे? इस कलाके कितने अंग थे? इस कलाके स्नातकोंको कौन-सी उपाधि दी जाती थी? सबसे बड़ी दुःखकी बात यह है कि इस कलाके किसी आचार्यने मठ, मन्दिर, स्तूप तो क्या भोज-पत्र या ताम्रपत्र तक नहीं बनवाये। इससे यह विश्वास होता है कि उन दिनों इसे हीन-कार्य माना जाता था। भविष्यमें इतिहासके गड़े मुर्दे उखाड़नेवाले किसी विद्वान्का ध्यान इस अछूते विषयकी ओर अवश्य आकर्षित होगा।

'शिव पुत्रके बाद कनकशक्ति, भास्करनन्दी और मूलदेव आदि इस विद्याके आचार्य हुए हैं। संस्कृत साहित्यमें मूलदेव अधिक प्रसिद्ध हैं। कादम्बरी, अवन्तिसुन्दरी कथा और कथा विलास आदि ग्रन्थोंमें इनकी चर्चा है। मूलदेवका दूसरा नाम 'कर्णिसुत' था। इनके 'कर्णिसुत-सूत्र'का उल्लेख मिलता है, पर यह ग्रन्थ या इसके उद्धरणतक प्राप्य नहीं है।'

पौराणिक ठग

प्राचीन कालमें इस विद्याकी उत्पत्ति चाहे जहाँ हुई हो, पर आधुनिक युगमें इस कलाके सर्वश्रेष्ठ आचार्य काशीमें हो चुके हैं—ऐसा माना जाता है।

कहा जाता है कि पौराणिक युगमें एक ठगने श्रीकृष्णपर हाथकी सफाई दिखाई थी। ठग थे—तत्कालीन काशी नरेश—पौण्ड्रक। हजरत अपनेको भगवान् समझने लगे। बनारसके चार सौ बीस श्रेष्ठ कारीगरोंने जनाबको दो नकली हाथ बनाकर जोड़ दिये। देश देशान्तरोंमें भगवान् रूपी चतुर्भुज काशी नरेशकी धूम मच गयी। भगवान् राधापतिकी 'प्रेक्टीज' पर गहरा धक्का लगा। पुराण चीख-चीख कर घोषित कर रहे हैं कि अपनी प्रेस्टीज' पर चूना लगानेवाले इस ठग काशी नरेशके लिए राधापतिको खड्ग हस्त होना पड़ा था।

आजके विद्वान् पुराणोंकी ऐतिहासिकतामें सन्देह प्रकट करने लगे हैं, सो मारिये गोली। आजसे सौ वर्ष पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बनारसी ठगोंसे खूब पाला पड़ा था। आधुनिक युगकी सबसे बड़ी ठगी 'रेशमी रूमाल ठगी'* को माना जाता है। यह ठगी मध्यभारतमें होती थी। उस ठगीका संचालन और रेशमी रूमालका निर्माण बनारसमें ही होता था। शायद इसीलिए लार्ड विलियम बेण्टिंकको इसे दबानेके लिए फौज भेजनी पड़ी थी।

इसमें सन्देह नहीं कि बनारसकी ठगी भी अपने आपमें ऐतिहासिक महत्व रखती है। धार्मिक नगरी होनेके कारण लोग यहाँ धर्मके नामपर

* कहा जाता है मध्यप्रदेशमें 'रूमाल ठगों' का एक गिरोह था। ये लोग रेशमीरूमालकी सहायतासे ठगी करते थे। जब इन्हें यह मालूम हो जाता था कि अमुक यात्री या व्यक्तिके पास रकम है तब वे राह चलते यात्रीके पीछेसे रेशमी रूमालका फन्दा फेंककर पीछे खींच लेते थे। रेशमी रूमालमें पैसा रखकर दो गाँठ बाँध दी जाती थी। जब यह दोनों गाँठ आपसमें मिलकर कस जाते थे तब श्वासनलिका दब जाती थी और इस प्रकार दम घुँट जानेकी वजहसे यात्रीका प्राणान्त हो जाता था।

पुण्य लूटनेकी गरजसे और मठ-मन्दिर बनवानेके लिए अपने साथ काफी रकम लाते थे। उस रकमको यहाँके ठग नकली तीर्थ-पुरोहित बनकर इस तरह उड़ाते थे जिसे देखकर प्राचीन युगके आचार्यको भी पसीना आ सकता था।

स्वर्गमें अपनी सीट रिजर्व करानेके कांक्षीको पूजा-अर्चनामें उलझाकर बेचारेकी गर्दन इस सफाईसे उतार ली जाती थी कि क्या मजाल जो आँख भी झपक सके। एक जमाना था जब नकली तीर्थ-पुरोहित दर्शन करानेके लिए अपने अड्डेपर ले जाते थे। अचानक रास्तेमें 'जय बाँसदेव' कहते ही पीछेसे यजमानोंके ऊपर 'बाँसदेव' गिर पड़ते थे। कुछ लोग काशी करवटको इस काण्डके लिए अधिक जिम्मेदार ठहराते है। 'बनारस गजेटियर' के अनेक पृष्ठ इस रक्त-रंजित ठगीके वर्णनोंसे भरे पड़े हैं।

बनारसी ठग

बनारसमें कौन ठग है और कौन रईस, यह बात जरा मुश्किलसे समझमें आती है। 'ठग जाने ठगकी भाषा' कहावतके अनुसार जहाँ भाषामें इतना अन्तर है तब उनकी वेष-भूषा और हथकण्डोंमें कितना अन्तर होगा, यह समझनेकी बात है। सच पूछिये तो बनारसी ठगोंकी कोई खास पहचान नहीं है। वह आपके पास सरकारी अधिकारी बनकर आ सकता है और आपका साला बनकर भी। 'का जाने केहि भेषमें नारायण मिल जाँय' कहावतकी भाँति कब किस वेषमें आपको वह ठग सकता है, यह आप नहीं भाँप सकते।

गलेमें सिकड़ी, आँखोंमें चश्मा, पैरोंमें नागरा जूता, कानमें इत्रका फाहा, तनपर तंजेबका कुर्ता, सरपर दोपल्लिया टोपी पहने और हाथमें चाँदीकी मूठकी छड़ी लिए बाजारमें टहलनेवाला व्यक्ति शहरका नामी रईस हो सकता है और नम्बरी ठग भी। वह व्यक्ति आवारा या शोहदा भी हो सकता है और एक पक्का जासूस भी। इसलिए बनारसमें कौन

व्यक्ति क्या है, जब तक अच्छी तरह जान न लिया जाय, उसके बारेमें राय देना उचित नहीं।

ठगोंके माई-बाप नहीं होते। वक्त जरूरतपर वे अपने बापको भी ठग लेते हैं। कहा जाता है कि एकबार एक सुनार परिवारमें उन्हींके घरकी लड़की ससुरालसे कुछ सोना लेकर अपने बापके घर जेवर बनवाने के लिए आयी। बेटा आगमें तपाकर जेवर बनाने लगा तभी बापजान 'राम-राम' कह उठे। बेटाको इशारा समझते देर नहीं लगी। उसने कहा—'क्या राम-राम बकते हो। सोनेकी लंका मिट्टीमें मिल गयी है।'

बापने सोचा था कि बेटा कहीं बहनके प्रति रियायत न बरते। इधर बेटा बापसे भी होशियार निकला। बापके इशारा करनेके पहले ही उसने बहनके जेवरसे सोना कपटकर राखमें मिला दिया था। यह है ठगोंकी भाषाका नमूना।

आज तो हालत यह है कि बेटा बापको ठगता है तो बाप बेटेको। पति पत्नीको ठग समझता है तो पत्नी पतिको। अधिक दूर क्यों रेल, बस और रिक्शेपर सवार होते समय लोग अपने सहयात्रीको इस प्रकार घूरते हैं मानों किसी 'चाइयाँ' या गिरहकटके पास बैठ रहे हों। सिर्फ यही नहीं, बल्कि तुरन्त अपनी अगल-बगलकी जेबोंको उठाकर सामनेकी ओर कर लेते हैं ताकि उनका सहयात्री उसका नाजायज फायदा न उठा ले।

ठगोंके हथकण्डे

अगर आप यह सोचते हों कि खास बनारसके व्यक्ति ठगोंके चंगुलमें नहीं फँसते तो आपका यह ख्याल गलत है। यह ठीक है कि बनारसी लोग ठगोंके अनेक हथकण्डोंसे परिचित हो गये हैं। इधर ठगोंका दल भी प्रगतिशील हो गया है। वे नित्य नये हथकण्डोंका आविष्कार करते रहते हैं।

एक जमाना था, जब नकली मृत बच्चा बनाकर औरतें आने-जाने वाले मुसाफिरोंको ठगा करती थीं। परदेशी यात्री बनकर 'हमारा सब सामान चोरी चला गया' कहकर लोग लोटा बेचते हुए दिखाई देते थे। कुछ बाबा दो-एक चमत्कार दिखाकर लोगोंको ठगा करते थे। कुछ लोग दूसरोंकी कमजोरीका और औरतोंके प्रेम पत्रोंको कब्जेमें कर ठगनेका कौशल रचते हैं। नयी कम्पनी, नयी फर्म और नयी संस्था बनाकर लोगोंको ठगना साधारण बात हो गयी है।

सिर्फ पुरुष ठग ही इस कार्यमें लिप्त नहीं रहते। पुरुषोंसे कहीं अधिक महिलाएँ इस दिशामें अधिक सक्रिय भाग लेती हैं। एक बार एक दूकानदारके यहाँ ४० रुपयाका कपड़ा लेकर अपने सोते हुए बच्चेको उसके यहाँ रख महिला ठग अपना सौ रुपयेका नोट भुनानेके लिए आगे बढ़ गयी। जब काफी देरतक नहीं लौटी तब दूकानदारने सोचा कि आखिर लड़का रो क्यों नहीं रहा है? कपड़ा हटाकर जब देखा तब वहाँ लड़केके स्थानपर रबड़का पुतला था। उस समयतक हजरत ४० रुपयेका कपड़ा खो चुके थे।

एकबार एक ठग एक प्रसिद्ध सर्राफके यहाँ १ हजार रुपयेका जेवर लेकर सौ-सौके दस नोट देकर चला गया। उसके जानेके थोड़ी देर बाद उसका सहयोगी आया और उसने भी एक हजार रुपयेका जेवर लिया। इसके बाद उसने कहा—'कैशमेमो काट दीजिये।'

दूकानदारने कैशमेमो काट दिया। हजरत बिना रुपया दिये जाने लगे तब दूकानदारने कहा—'साहब रुपया दीजिये।' उसने कहा—'रुपया मैं आपको दे चुका हूँ। आपने अपने बक्समें रखा है, देख लीजिये।'

आँखके सामने इस तरह ठगी करते देख सर्राफने उसे पुलिसके हवाले कर दिया। पुलिसके सामने ठगने बयान दिया कि मैंने सौ-सौके दस नोट इन्हें दिया है। सभी नोटोंपर मेरे हस्ताक्षर हैं। यकीन न हो तो तलाशी लेकर देख लिया जाय। इसके पूर्व जो ठग सौ-सौके दस नोट

दे गया था, उनपर दूसरे ठगके हस्ताक्षर प्रमाणित हो गये। इस प्रकार वह बच गया। बनारसमें इस ढंगकी भी ठगी होती है।

बाँझ औरतोंको बच्चा होनेकी दवा देनेवाले, अवारे पतिको वशमें करनेके लिए पूजा पाठ करनेवाले, मुकदमें जितानेवाले और कीमिया (नकली सोना) बनाने वालोंकी कमी यहाँ नहीं है।

बनारसी ठगीका अनूठापन सिद्ध करने वाले कुछ 'चित्र' प्रस्तुत किये जा रहे हैं। विश्वास है, इससे आपको आनन्द आ जायगा।

नेपालके राज परिवारसे सम्बद्ध एक राणा साहब सपरिवार काशी दर्शनके निमित्त पधारे थे। गंगा स्नान करनेवाली औरतोंको कलात्मक ढंगसे गायब करके उनके शरीरपरके आभूषणोंपर हाथ साफ कर देनेकी घटनाएँ, पर्याप्त सुख्याति प्राप्त कर चुकी थी। होता यह था कि गंगाके अन्दर, घाटसे दूर खूँटे गाड़ दिये गये थे। घाटसे डुबकी लगाकर औरतोंको घसीटकर उन्हीं खूँटोंमें बाँध दिया जाता था। घटनास्थलसे काफी दूर होनेके कारण किसी माईके लालको रहस्यका भास भी नहीं होता था। आभूषण तो जाते ही थे, लाशतकका कोई पता नहीं चलता था।

उक्त राणा साहब अपनेको जरा होशियार समझते थे। उन्होंने सोचा, ऐसी घटनाएँ औरतोंके शरीरके आभूषणोंके कारण ही घटित होती हैं। सो उन्होंने परिवारकी औरतोंसे स्नानके पूर्वके शरीरके आभूषणोंको उतार देनेको कहा। सारे आभूषणोंको एक मजबूत टोकरीके नीचे दबा, उसके ऊपर हाथमें नंगी खुखड़ी लेकर हजरत जम गये। मनमें ठगों-को एक बढ़िया-सी गाली देकर निश्चिन्त हो गये। बनारसी-ठगोंकी नज़र आभूषणोंपर पहले ही पड़ चुकी थी और इसका मतलब था, जैसे भी हो, उनपर अधिकार जमाना। औरतोंका शरीर निराभूषण था, सो वे व्यर्थ थीं। आकर्षणका केन्द्र राणा साहब ही थे।

थोड़ी ही देर बाद राणा साहबने देखा, साठ-सत्तर वर्षका एक वृद्ध स्नानोपरान्त भीगे ही वस्त्रोंमें सीढ़ीपर चढ़ रहा है। भीड़-भाड़ बहुत थी। अचानक उस वृद्धकी गीली धोतीसे एक गिन्नी झन्न-से राणासाहबके पास ही गिरी। परन्तु वृद्ध राम-राम कहता हुआ आगे ही बढ़ता गया। राणा-साहबने चौंककर देखा, दस कदम बाद फिर एक गिन्नी, दस कदम बाद एक और—ऐसे ही हर दस कदम बाद बीसों गिन्नियां पड़ी थीं, पर लगता था उनकी ओर वृद्धका ध्यान ही न गया हो। गिन्नियोंकी चमकने राणाको विचलित-सा कर दिया। धीरेसे उठे और उन गिन्नियोंको समेट ले आये। वृद्ध अदृश्य हो चुका था। गिन्नियोंको जेबके हवाले कर वे फिर टोकरी पर जा बैठे। खेल समाप्त हो चुका था। औरतें जब स्नान करके वापस आयीं तब टोकरीके नीचे आभूषणोंके स्थानपर बड़ा-सा 'जीरो' रखा था।

अपना एक स्मरणीय अनुभव है। मेरे एक मित्रको हृषिकेशवाला पञ्चाङ्ग चाहिए था। मैंने उसे देखकर दूकानदारसे बाँध देनेको कहा। तभी पासके एक दूकानमें चार-पाँच गृहस्थ स्नान और देव-दर्शनके पश्चात् मस्तकपर चन्दनका तिलक लगाये गोस्वामी तुलसीदासका रामायण खरीदने आये।

दूकानदारने सरसे पैर तक घूरनेके बाद ग्राहकको भाँप लिया। फिर रामायणपर छपे १५ रुपया मूल्यपर उँगली रखते हुए गम्भीर स्वरमें कहा—'दाम त देखते हउवा गृहस्थ, भगत आदमी हउवा, बोहनी क बखत हव, तोसे मोल-चाल न करब, तोरे बदे १३ रुपयामें दे देब। देख, कोईके बताये जिन, नाही त हमरे लिए मुश्किल हो जाई। (अर्थात् दाम तो देख ही रहे हो, गृहस्थ आदमी हो, भगत हो, इधर बोहनीका समय है, तुमसे मुनाफा नहीं लूँगा। तेरह रुपयामें दे दूँगा, लेकिन किसीको बताना नहीं, वर्ना मेरे लिए मुश्किल हो जायगी।)

गृहस्थ बेचारे चमत्कृत हो उठे। सोचा—बनारसमें रामायणके विक्रेता भी बड़े भारी भक्त हैं। बेचारा १३ रुपया देकर रामायण लेकर

चला गया, जब कि उसकी कीमत ४ रुपया थी। इधर मैं यह तमाशा देख रहा था, उधर मेरे दूकानदारने मेरी लापरवाहीका भी फायदा उठा लिया। एक हफ्ते बाद मेरे मित्रने मुझे लिखा कि मैंने तुम्हें हृषिकेश-वाला पञ्चाङ्ग भेजनेको कहा था न कि रद्दीकी कतरनोंका बण्डल।

मैं अपनी मूर्खतापर चमत्कृत हो उठा। कर ही क्या सकता था। स्वर्गीय प्रेमचन्द्रजीने भी इसी तरह एक दूकानदारको ६ सन्तरा बढ़िया बाँध देनेके लिए कहा, जब वे घरसे आये तब सबके सब सन्तरे सड़े निकले।

आजकल ठगोंका एक नये हथकण्डेका आविष्कार हुआ है। दो आदमी पहलेसे एक नयी साइकिल लिए टहलते रहते हैं। जहाँ कोई नयी साइकिल खड़ी देखते हैं, वहाँ एक आदमी साइकिल लेकर जाता है और ठीक दूसरी साइकिलके बगलमें अपनी साइकिल रख दूकानके भीतर चला जाता है। पहलेवाला व्यक्ति, जिसकी साइकिल बाहर रहती है, उसे सिर्फ यही ख्याल रहता है कि मेरी साइकिल अपनी जगहपर है तो। दूसरे अपनी साइकिलकी कोई पहचान नहीं कर पाता। इसी बीच जो व्यक्ति (ठग) भीतर जाता है, बाहर आकर पहले वाले व्यक्तिकी साइकिल लेकर गायब हो जाता है और जब पहला व्यक्ति बाहर आकर उस साइकिलपर हाथ रखता है तब ठगका दूसरा दोस्त जो उसी जगह सारी कार्यवाहियोंपर नजर रखता है, आकर बाधा देता है। इस प्रकार पहलेवाले व्यक्तिकी आँखोंके आगे अन्धेरा छा जाता है।

अब तो बनारसके लोग काफी होशियार हो गये हैं। नकली नाते-रिश्तेदारोंपर भी विश्वास नहीं करते। ठगोंकी सीमा केवल इन्हीं बातोंपर स्थिर नहीं है। कुछ ठग पत्रकार बनकर भी ठगते हैं। वे आपकी रचना आपके नामसे छापकर आपके नामका वाउचर बनाकर रुपया हजम कर लेंगे। आपने सोचा—चलो अच्छा हुआ कमसे कम मेरी रचना तो छप गयी। उधर सम्पादकजीने आपपर एहसानका एहसान किया और पुरस्कार

मुनाफेमें ले लिया। पत्रकार बनकर कहीं भी किसी जगह रोब जमाकर ठगा जा सकता है, बशर्ते भेद न खुल जाय।

आप विश्वास करें या न करें, कुछ पेशेवर ठग कचहरीके अहातेमें 'जमानत' देनेके लिए घूमते-फिरते रहते हैं। ऐसे लोग अक्सर यह पता लगाते रहते हैं कि किसके मकानका टैक्स काफी दिनोंसे दिया नहीं गया है। हजरत उनका टैक्स चुकाकर रसीद ले लेते हैं और उसी रसीदकी बदौलत जमानतके इच्छुक देहातियोंसे काफी रकम मूड़कर जमानत दे देते हैं। इसके बाद अगर वह आदमी मुकदमें जीत जाता है तो कोई बात नहीं, वर्ना अदालतसे उस मकान-मालिकके नाम कुर्की आ जाती है। उस समय बेचारा मकान-मालिक यह समझ नहीं पाता कि यह कुर्की क्यों आयी? मैंने कब किसकी जमानत दी है?

ऐसे हैं बनारसी ठगीके हथकण्डे।

: बनारसी संस्कृति :

बनारस धार्मिक क्षेत्र ही नहीं है, पण्डितोंकी नगरी भी है। धर्म और संस्कृतिका पण्डिताऊपन जितना यहाँ है, उतना अन्यत्र नहीं है। आज भी ज्योतिष शास्त्रमें काशीके स्टैण्डर्ड समय और ज्योतिषकी मान्यता सारे देशमें है। शायद इसीलिए इस शहरको भारतकी सांस्कृतिक राजधानी कहा गया है।

सात वार नौ त्योहारकी नगरी

हिन्दीमें एक कहावत है—'काशीका अद्भुत व्यवहार, सात वार नौ त्योहार।' अगर आप काशीमें दो एक-साल रह जायँ और आपकी पत्नी कुछ अधिक धर्मपरायण हो तो यकीन मानिये इन त्योहारोंमें खर्चा करते-करते करोड़पतिकी भी लुटिया डूब जा सकती है। यही वजह है कि बनारस वाले खानेके अधिक शौकीन हैं। पहननेके शौकीन इसलिए नहीं हैं कि खानेसे अधिक पैसा बच ही नहीं पाता, क्या करें बेचारे। जो लोग यहाँ सड़कोंपर फुट-पानी देकर टहरान देते हैं, सही मानेमें वह केवल उनका दिखावा है, अन्तसके वे असली बनारसी नहीं हैं।

हमें इस बातका गर्व है कि बनारसके अलावा हिन्दुस्तानके किसी भी शहरमें इतने प्रेमसे इतने अधिक त्योहार नहीं मनाये जाते। भले ही उनका रूप यहाँ साधारण हो, अधिक टीम-टाम न हो और उनमें ऐश्वर्यके दर्शन न हों, लेकिन त्योहार तो श्रद्धा-भक्ति और संस्कृतिके अंग होते हैं, उसमें ऐश्वर्यके दर्शनका अर्थ केवल दिखावा मात्र होता है। लखपतिके घरके शालिग्राम सोनेके सिंहासन पर रहते हैं और गरीबके घर पेपरवेटकी तरह जमीनपर बेलपत्र और शुद्ध गंगाजल सेवन

करते हैं। बड़ोंके घर भगवान् किरायेके पण्डित द्वारा पूजित होते हैं और गरीबके घर अशुद्ध मंत्र पाठ द्वारा पूजित होते हैं, इन दोनों रूपोंका सामंजस्य यहाँके मेलोंमें, पर्वोंमें और मन्दिरोंमें देखा जा सकता है।

सच पूछिये तो पर्व और सामाजिक प्रथाएं ही संस्कृतिके अंग हैं। बनारसमें त्योहारोंका रूप देखकर यह अनुभव नहीं होता कि हम हाइड्रोजन बमके युगमें हैं, भारतमें अन्न संकट हैं, हम विदेशी सहायता-पर पल रहे हैं और देशमें भयंकर गरीबी है। यद्यपि यह बात ठीक है कि आजकल पहलेकी तरह पर्व नहीं मनाये जाते, फीका-फीका-सा अनुभव होता है, फिर भी उनका रूप आज भी मौजूद है।

उदाहरणके लिए सूर्यग्रहणको ही ले लीजिये, यह एक बे-मौसकका पर्व है। सूर्यग्रहणका महत्व कुरुक्षेत्रमें है और चन्द्रग्रहणका बनारसमें। लेकिन सूर्यग्रहणके अवसरपर बनारसके कुरुक्षेत्रकी दशा देखकर यह विश्वास नहीं होता कि इतनी दुर्गति पंजाबके कुरुक्षेत्रकी होती होगी।

बनारसका वर्ष प्रथम मेला 'रथयात्रा' माना जाता है। यदि पुरीको भारतके नक्शेसे गायब कर दिया जाय तो बनारसके रथयात्रा मेलाकी तुलना कहींसे नहीं की जा सकती। गर्मीसे दग्ध आकुल हृदयोंका यहाँ तीन दिनोंतक अखण्ड सम्मेलन होता है। नानखटाई और देशी पानका प्रथम भोग इसी मेलेसे शुरू होता है। शायद ही ऐसा कोई अरसिक व्यक्ति होगा जो यहाँकी छटा देखकर मुग्ध न हो जाय।

रथयात्राके बाद बनारसमें मेलोंकी बाढ़ आ जाती है। गर्मीमें घरोंमें बन्द रहनेके पश्चात् यहाँके नागरिक मेला या पर्वमें उसी प्रकार भाग लेने लगते हैं, जैसे गोशालासे बाहर उन्मुक्त हवामें आकर गायें उछलने लगती हैं। दुर्गाजी, सारनाथ, संकटमोचन, लोलार्क, सोरहिया, बेचूबीर, प्यालेका मेला और अनन्त चौदस आदि पर्व आषाढ़से भादोंतक मनाये जाते हैं। नाग पंचमीके दिन भोरके समय बनारसके गली कूंचेमें 'छोटे

गुरूका बड़े गुरूका नाग लो भाई नाग लो'की आवाज गूँजने लगती है। दोपहरतक सभी अखाड़ोंमें बनारसी पट्ठोंका दंगल चालू रहता है। यहाँकी 'नाग नथैया' (कालियादहन) जैसी खतरनाक लीला करनेका ताव शायद ही किसी शहरवालेको हो। इस लीलाको देखकर एकबार बड़े-बड़े सूरमा भी 'दहल' जाते हैं। बाढ़के दिनोंमें यह लीला देखनेके लिए सारा शहर उमड़ पड़ता है। अब तो दुर्घटनाएं कम होती हैं, वर्ना प्रतिवर्ष भीड़ और बाढ़के कारण इस लीलामें दो-चार व्यक्ति मर जाते थे।

अनन्त चौदसके बाद बनारसकी हर मुहल्लेकी रामलीला शुरू हो जाती है। बहुत कम लोगोंको यह बात मालूम है कि काशीमें रामलीलाके जन्मदाता और प्रथम व्यास गोस्वामी तुलसीदासजी रहे। कहनेको काशी शिवकी नगरी है, पर रामलीलाओंका रूप देखकर यह अनुभव होता है कि मानों त्रेतायुगमें रामचन्द्रजी अयोध्यामें नहीं, बनारसमें रहते थे। यों तो रामनगरकी लीला सारे भारतमें प्रसिद्ध है और नित्य बनारससे काफी लोग उसपार 'झाँकी' (लीला) देखने जाते हैं। रामनगरका लंका दहन, लक्साकी फुलवारी-धनुषयज्ञ, चेतगंज, खोजवाँ, शिवानगर और काशीपुराकी नककटैया अपने ढंगकी निराली होती है। बनारसकी सबसे प्रसिद्ध लीला चेतगंजकी नककटैया और नाटी इमलीका भरतमिलाप है। चेतगञ्जकी नक्कटैया देखनेके लिए लोग रात १२ बजेसे सुबह ८ बजेतक तपस्या करते हैं। नाटी इमलीका भरतमिलाप अपनी सादगीके लिए बेजोड़ है। कहा जाता है, एकबार कोई अंग्रेज सज्जन उधरसे गुजर रहे थे। इस लीलाको देखकर वे रुक गये। परिहासवश उन्होंने अपने चपरासीसे पुछवाया कि रामायणमेंके हनुमान् तो समुद्र लांघ गये थे, क्या यह हनुमान् सामनेवाली वरुणा नदी लाँघ सकते हैं?

सुना जाता है—यह चैलेञ्ज सुनकर हनुमान बना व्यक्ति राम बने व्यक्तिसे आज्ञा माँगकर इस पारसे उछलकर वरुणाके उसपार पहुँच गया

और तत्काल मर गया। आज भी उसके मुकुटकी पूजा होती है। बनारसकी यही एक लीला है, जिसके लिए सम्पूर्ण बनारसका कारबार बन्द रहता है। पाँच मिनटकी झाँकीके लिए सारा शहर उमड़ पड़ता है। उस दिन वहाँ २ रुपयेसे ६४ रुपये तकके बैठनेके टिकट बिकते हैं। एक यही लीला है जिसे देखनेके लिए महाराज बनारस आते हैं।

काशीको तीन लोकसे न्यारी सिर्फ एक-दो गुणोंके कारण नहीं कहा गया है। यहाँ अनेक अजीब बातें होती हैं। उदाहरणके लिए बनारसमें प्रत्येक पर्व दो दिन मनाया जाता है। प्रथम दिन शैव मतवाले मनाते हैं और दूसरे दिन उदया तिथिपर वैष्णव मतवाले मनाते हैं। अगर कहीं दोनोंका एक ही दिन, निश्चित हुआ तो पूछना ही क्या। कभी-कभी तो कोई पर्व तीन-तीन दिन मनाया जाता है। मसलन जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि। दो दिन तो सभी त्योहार मनाये जाते हैं। नवरात्रका मेला यहाँ वर्षमें दो बार मनाया जाता है। एकबार आश्विनमें दूसरी बार चैत्रमें। कुछ लोगोंका कहना है कि कलकत्ताके बाद बनारसका दशहरा पर्व दर्शनीय होता है। पूर्वी देशोंसे भी इस अवसरपर इतने यात्री आते हैं कि रिक्शावालोंका मिजाज नहीं मिलता। दीपावलीका महत्व और चाहे जिस रूप में हो, बनारसमें इसका अन्नकूटसे और सोलहपरीके नाचसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। दीपावलीके दिन जुआ न खेलनेसे छछुन्दरका जन्म होता है। पिशाचमोचनका मेला मूली और भण्टाके लिए प्रसिद्ध है। इसी माहमें औरातरे (आँवला वृक्षके नीचे) पिकनिक मनाना भी पर्वमें शामिल किया गया है।

माघ मासमें 'वेदोव्यास' इसलिए दर्शन किया जाता है ताकि बनारस-वालोंके लिए उन्होंने जो शाप दे रखी है, उससे मुक्ति मिल जाय। पिकनिकका पिकनिक और पुण्य मुनाफेमें लूटनेका यह बनारसी हथकण्डा है। कहनेका मतलब वक्त जरूरतपर लोग भगवान्‌को भी चरका देते हैं।

बरसानेकी होली उन दिनों देख चुका हूँ जब वहाँ चार आने सेर रबड़ी और छः पैसे सेर दूध बिकता था। मिथिलाकी कीचड़की होली देख चुका हूँ। उस ढंगकी होली यद्यपि बनारसमें नहीं होती, लेकिन बनारसमें जिस ढंगकी होली होती है, उस ढंगकी और कहीं नहीं। धर्मयुद्धके नामपर होलीके दिन मीरघाटपर गुरू लोग आपसमें लड़ते हैं। यहाँ घायल होने पर न तो थानेपर रिपोर्टकी जाती है और न यहाँके युद्धमें मर जाने-पर फांसीकी सजा होती है। बहादुरीके साथ लड़नेवालोंकी गणना पहलवानोंमें की जाती है। घायल व्यक्ति कराहते हुए मारनेवालेके लाठीकी दाद देता रहता है। बनारसकी होलीकी यह विशेषता विश्वमें बेजोड़ है।

होलीके पश्चात् प्रथम मंगलवारके दिनसे बनारसके बुड्ढे अपना रंग दिखाने लगते हैं। 'भर फागुन बुढ़ऊ देवर लागे' कहावतके अनुसार यहाँका अनोखा पर्व 'बुढ़वामंगल' शुरू हो जाता है। पहले इस अवसर पर अनेक अनाचार होते रहे। नावोंपर वेश्याएँ नाचती थीं, लोग नशेमें बुत बने बैठे तमाशा देखा करते थे। इस तरह रातभर प्रोग्राम चालू रहता था।

बुढ़वा मंगलकी छटाका वर्णन आजसे १५० वर्ष पूर्व अपनी आँखों देखा वर्णन कवि जयनारायण घोषाल कर गये हैं—

मयूरपंखी घोड़दौड़ देखि कदाचित्त, कतक पाटेली मध्ये चाँदोया विहित।
ए' सकल नौका मध्ये करिया बिछाना, गागासि संगमें नौकालय सबजना।
एई मत नौका हय चारि पाँच शत शकले भाटिया चले सहर पर्यन्त।
पचगंगा घाट यथा तत दूरे अन्त

अर्थात् पटी हुई तीव्रगामी नौकाएँ, बजरें, डोगियाँ, मयूरपंखी और घोड़दौड़ नावें दिखायी देती हैं। पटी हुई नौकाओंपर चँदवा तना होता है। अस्सीसे लेकर पंचगंगा घाटतक नावोंका जाल बिछा रहता है। लगभग चार-पाँच सौ नौकाएँ एक-दूसरेसे बँधी रहती हैं। इन नौकाओं पर नाच-तमाशे इस प्रकार होते थे—

बड़-बड़ पाटलिते पंखरिया नाचे, आउरा छोकरा भाँड़कत काचकाचे।
तबला सारंगी बांशी सेतार मुचंग, मंदरा रबाब वीणा तंबूरा मृदंग।

कहनेका मतलब इन नौकाओंपर भाँड़ और वेश्याएँ नाचती थीं। तबला, सारंगी, सितार और तम्बूरा आदि वाद्योंसे सारा वातावरण मुखरित रहता था।

इन दर्शकोंको नौकाओंपर ही सारा सामान मिल जाता था—

कोन पाटलिर परे बसे हालोआई,
चूला चाकी लइया पाक करये मिठाई।
मतिचूर पानितूया खाजा आदंरसा,
मगदल वेसन लाड्डू संगन पर्छद,
पेड़ा बरफी बुंदिया मिछरी चीनीकंद।
छोहरी कचोरी पूरी सर्व द्रव्य ताजा
मोरब्बा आचार शाक तरकारी भाजा
जखन जाहार क्षुधा हइलो उदय
नौका-नौका लागाइया जा चाहे ता लय
कोनो-कोनो नौका ते तांबूली वास करे
दिव्य पान सांची छूटा केहो बीड़ा धरे

छोट-छोट नौका ते तामाक भाँग गाँजा, बिकि किनि करिया अनेक करे मजा।
एई रूपे केहो निशि करे जागरण, अपर दिवस डेढ़ प्रहर जखन।
नौका हइते उतरिया सभे घरे जाय, एई खण्ड हइते होलिर बिदाय।

बुढ़वा मंगलका पर्व काशीका अनूठा पर्व रहा। जालियाँ वागवाले हत्याकाण्डके बादसे बनारसमें बुढ़वा मंगल ही नहीं, गुलाबबाड़ी तक बन्द कर दिया गया। इधर कुछ वर्षोंसे पुनः आयोजन हो रहा है, पर वह समाँ नहीं, वह रौनक नहीं और न इसके पुराने शौकीन ही रह गये। गत वर्षसे काशीके कुछ पत्रकारोंने होलीके पूर्व युवक मंगल मनानेका

अनूठा आयोजन किया है और शायद आगे चलकर इसे भी 'पर्व' मान लिया जा सकता है।

आजाद शहर

भारतको सन् १९४७में आजादी मिली। अब हम आजाद हैं। आजादीका क्या उपयोग है, इसकी शिक्षा लेनी हो तो बनारस चले आइये। बनारसवाले १९४७ से ही नहीं, अनादिकालसे अपनेको आजाद मानते आ रहे हैं। इन्हें नयी व्यवस्था, नया कानून या नयी बात कतई पसन्द नहीं। इसके विरुद्ध वे हमेशा आवाज उठायेंगे। बनारस कितना गन्दा शहर है, इसकी आलोचना नेता, अतिथि और हर टाइपके लोग कर चुके हैं, पर यहाँकी नगरपालिका इतनी आजाद है कि इन बातों का ख्याल कम करती है। खास बनारस वाले भी सोचते हैं कि कौन जाय बेकारका सरदर्द लेने। हिन्दुस्तानमें सर्व प्रथम हड़ताल २४ अगस्त सन् १७९० ई०में बनारसमें हुई थी और इस हड़तालका कारण थी गन्दगी। सिर्फ इसी बातके लिए ही नहीं, सन् १८०९ ई०में जब प्रथम गृहकर लगाया तब बनारसी लोग अपने मकानोंमें ताला बन्दकर मैदानोंमें जा बैठे। शारदा बिल, हिन्दूकोड बिल, हरिजन मन्दिर प्रवेश, गल्ले-पर सेलटैक्स और गीता काण्ड आदि मामलोंमें सर्व प्रथम बनारसमें हड़तालें और प्रदर्शनें हुई हैं। कहनेका मतलब बनारसवाले हमेशासे आजाद रहे और उन्हें अपने जीवनमें किसीकी दखलन्दाजी पसन्द नहीं आती। यहाँ तक कि वेष-भूषामें परिवर्तन लाना पसन्द नहीं हुआ। आज भी यहाँ हर रंगके, हर ढंगके व्यक्ति सड़कोंपर चलते-फिरते दिखाई देंगे। एक ओर ऊँट, बैलगाड़ी, भैंसा गाड़ी है तो दूसरी ओर मोटर, टैक्सी, लारी और फिटन है। एक ओर अद्धी तंजेब झाड़े लोग अदासे टहलते हैं तो दूसरी ओर खाली गमछा पहने दौड़ लगाते हैं।

आप कलकत्ताकी सड़कोंपर धोतीके ऊपर बुशशर्ट पहने या कोट-पैण्ट पहनकर पैरोंमें चप्पल पहने तो लोग आपको इस प्रकार देखेंगे

मानों आप सीधे रांची (पागल खाना)से चले आ रहे हैं। यही बात दिल्ली और बम्बईमें भी है। वहाँके कुली-कबाड़ी भी कोट-पैण्ट पहने इस तरह चलते जैसे बनारसमें ई० आई० आर०के स्टेशन मास्टर। यहाँके कुछ दूकानदार ऐसे भी देखे गये हैं जो ताश, शतरंज या गोटी खेलनेमें मस्त रहते हैं, अगर उस समय कोई ग्राहक आकर सौदा माँगता है तो वे बिगड़ जाते हैं। 'का लेब? केतन क लेब? का चाही, केतना चाही?' इस तरह सवाल करेंगे। अगर मुनाफेदार सौदा ग्राहकने न मांगा, तबियत हुई दिया, वर्ना माल रहते हुए वह कह देंगे—नाहीं हव—भाग जा।' खुदा न ख्वास्ता ग्राहककी नजर उस सामानपर पड़ गयी तो उस हालतमें भी वह कह उठते हैं—'जा बाबा, जा, हमें बेचेके नाहीं हव।'

है किसी शहरमें ऐसा कोई दूकानदार? कभी-कभी झुंझलाकर वे मालका चौगुना दाम बता देते हैं। अगर ग्राहक ले लेता है तो वह ठगा जाता है और दूकानदार जट्टूकी उपाधि मुफ्तमें पा जाता है।

बनारसकी सड़कोंपर चलने-फिरनेकी काफी आजादी है। सरकारी अफसर भले ही लाख चिल्लायें, पर कोई सुनता नहीं। जब जिधरसे तबियत हुई चलते हैं। अगर किसी साधारण आदमीने उन्हें छेड़ा तो तुरन्त कह उठेंगे—'तोरे बाप क सड़क हव, हमार जेहरसे मन होई, तेहरसे जाब, बड़ा आयल बाटऽ दाहिने-बाँयें रस्ता बतावे।' जब सरकारी अधिकारी यह कार्य करते हैं तब उन्हें भी कम परेशानियाँ नहीं होती। लाचारीमें हार मानकर वे भी इस सत्कार्यसे मुँह मोड़ लेते हैं।

सड़कपर घण्टों खड़े होकर प्रेमालाप करना साधारण बात है, भले ही इसके लिए ट्रैफिक रुक जाय। जहाँ मनमें आया लघुशंका करने बैठ जाते हैं, बेचारी पुलिस देखकर भी नहीं देखती। डबल सवारी, बिना बत्तीकी साइकिल चलाना और वर्षोंतक नम्बर न लेना रोजमर्रेका काम है। यह सब देखते-देखते यहाँके अफसरोंका दिल पक गया है। पक

क्या गया है, उसमें नासूर भी हो गया है। यही वजह है कि वे लोग साधारण जनताकी कम परवाह करते हैं। परवाह उस समय करते हैं जब ये सम्पादक नामधारी जीवाणु उनके पीछे हाथ धोकर पड़ जाते हैं। कहा गया है कि खुदा भी पत्रकारोंसे डरता है।

मतलब यह कि हिन्दुस्तान का असली रूप देखना हो तो काशी अवश्य देखें। बनारसको प्यार करनेवाले कम हैं, उसके नामपर डींग हाँकनेवाले अधिक हैं। सभ्यता-संस्कृतिकी दुहाई देकर आज भी बहुत लोग जीवित हैं, पर वे स्वयं क्या करते हैं, यह बिना देखे नहीं समझा जा सकता। सबके अन्तमें यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि बनारस बहुत अच्छा भी है और बहुत बुरा भी।